॥ श्री राम ॥

हंस–कलाधर

[नल-दमयन्ती - कथानक के आधार पर]

रचयिता

शम्भू नारायण सिंह 'अकिंचन'

सं० २०४४ वि०　　　　मूल्य-५१ रुपये

प्रकाशक—

रचयिता स्वयं

सर्वाधिकार सुरक्षित
रचयिता के अधीन

प्रथम संस्करण—१,०००

सं०—२०४४ वि०
सन्—१९८७ ई०

मुद्रक—
गौरी शंकर लाल
दी गोल्डेन प्रिंटर्स
सी० ३३/५८, डी–४, छित्तूपुर,
सिगरा, वाराणसी।

संस्तव

नल-दमयन्ती की कथा एक बडी प्राचीन और निजंधरी (भारतीय लीजेंड्री) कहानी या आख्यान है। 'नलोपाख्यान' महाभारत में बडे विस्तार से मिलता है। वहाँ नल के जीवन की विस्तृत गाथा गाई गई है। जन्म से लेकर राज्य-प्राप्ति, दमयन्ती के साथ विवाह, द्यूत-क्रीड़ा में भाई से पराजय, राज्य-च्युति, वन-गमन, वन में दमयन्ती-त्याग, दमयन्ती-दुर्दशा, पुन: दमयन्ती का राजगृह पहुँचना, नल का सारथिकर्म एव सारथि-विद्या सिखा कर द्यूत-विद्या में शिक्षित और लोकोत्तर नैपुण्य प्राप्त करना तथा अन्त में जूआ में भाई को हराकर स्वकीय राज्य की पुनः प्राप्ति।

संस्कृत में नलोपाख्यान को लेकर अनेक काव्य-नाटक लिखे गए। 'नलोदय काव्यम्', 'नलचरितम्', 'नलोद्वाहनाटकम्', 'नल-चम्पू' इत्यादि। जहाँ तक मुझे ज्ञात और श्रुत है, भारत की सभी भाषाओं में इस निजंधरी लोक गाथा को लेकर उपन्यास, नाटक, काव्य, कहानिया लिखी गई हैं। विदेशों तक उसका प्रचार है।

श्री हर्ष कवि के 'नैषधीयचरितम्' का स्थान नलकाव्य-वाङ्मय में अपूर्व और अतुलनीय है। श्री हर्ष एक ऐतिहासिक पुरुष थे। उन्होंने बड़े गर्व के साथ अपने विषय में लिखा है कि कान्यकुब्जेश्वर से उन्हें ही राज-सभा में पहुँचने पर 'ताम्बूलद्वय' और बैठने के लिए प्रतिष्ठानुकूल आसन का सम्मान प्राप्त होता था। इसका कारण था उनका वैदुष्य और काव्य-प्रतिभा।

वे अनेक शास्त्र के और विशेषतः शङ्कराचार्य के अद्वैत वेदान्त के महा पंडित थे। 'खण्डन-खण्ड-खाद्य' नामक वेदान्त के अति प्रौढ़ ग्रन्थ के वे निर्माता थे। उन्होंने 'चिन्तामणि' मंत्र की सिद्धि प्राप्त की थी। कहा जाता है कि रात्रि को वे काव्य-रचना करते थे और प्रातः और भी उत्कृष्ट कल्पना उनके सम्मुख उपस्थित हो जाती थी। तब रात्रि के पद्य को वे नष्टकर दूसरी कविता लिखकर

थे। यही क्रम निरंतर चलते देख उनकी माता ने सोचा कि यही हालत रही तो श्रीहर्ष कभी कविता न पूरी कर सकेगा, वह नित्य नयी रचना करता और उसे नष्ट करता ही रह जायेगा। कवि की बुद्धि से संबद्ध कल्पना की दौड़ को मन्दगतिक बनाने के लिए उसने बासी भात और भैंस का दूध खिलाना प्रारम्भ किया। कहा जाता है कि उक्त भोजन से बुद्धि मन्द हो जाती है।

इस जनश्रुति मे भले ही कोई तथ्य न हो पर यह सत्य है कि श्री हर्ष की रचना में कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध कल्पना एवं तदनुसारी व्यंग्यार्थ और नई-नई कल्पनाओं का उज्ज्वल विलास है। इसी कारण 'पञ्चनली' का पूरा का पूरा प्रकरण पञ्चार्थ बोधक (पाँच अर्थों का बोध कराने वाला) शब्द-श्लेष (अभंग और सभंग दोनों) से परम चमत्कारिक है। अस्तु यहां 'नैषधीय चरितम्' के विषय में इतना ही कहना है कि संस्कृत-काव्य-वाङ्मय में वह अतुलनीय है। वह 'बृहत्त्रयी' (किरातार्जुनीयम्, 'शिशुपाल वधम्' और 'नैषधीय चरितम्') का एक अमूल्य, अनुत्तर रत्न है। पर उसकी आधिकारिक कथा 'खण्ड काव्य जैसी' अति लघु है। नल-दमयन्ती के द्वारा जागरित पूर्वराग, पूर्वरागजन्य विरह, स्वयंवर और अति श्रृंगारी नायक-नायिका के संयोग श्रृंगार का ही मुख्य वर्णन है।

वह अलंकृत शैली का अत्यन्त उत्कृष्ट काव्य है। श्लेष, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, उपमा, काव्यलिंग, विभावना आदि अलंकारों की विच्छित्ति और वक्रोक्ति से उक्त काव्य संस्कृत अलंकृत शैली के उत्कृष्टतम काव्यों में है। 'पञ्चनली', 'चन्द्रोपालंभ', 'कामोपालंभ' अतुलनीय हैं। 'हंस' की चेष्टा के प्रकरण में स्वभावोक्ति रमणीय है। वक्रोक्ति, लक्ष्योक्ति और व्यंग्योक्ति—पांडित्य-मंडित है। दर्शन-पाण्डित्य अपूर्व है। महाकाव्यीय आवश्यक विहार और प्रकृति-वर्णन भी सुन्दर है। इतना सब कुछ 'नैषधीय-चरितम्' मे रहने पर भी श्री शम्भूनारायण सिंह 'अकिंचन' ने नलदमयन्ती की प्रेम-कथा को लेकर अपने इस प्रेम-प्रसंग-प्रधान श्रृंगार-काव्य का निर्माण किया। इसमें वे अत्यंत सफल भी हैं।

इस महाकाव्य को यदि हम चाहें तो अन्तिम सर्गो (निसर्ग-दर्शन, भ्रमण-दिवस और हंस-प्रदीप आदि) के आधार पर शान्तरस-पर्यवसायी शृंगार-काव्य कह सकते है। इस महाकाव्य की प्रथम विशेषता है कि प्राचीन संस्कृत-काव्यो के समान सर्गबद्ध है, परन्तु अभिव्यक्तियाँ और प्रकृति-चित्रण, भावाभिव्यक्ति-वर्णन, लक्ष्यार्थ-व्यग्यार्थ-प्रयोग एवं अभिव्यजन शैली सर्वथा आधुनिक और बहुत अंशों में स्वच्छन्दतावादी है। कथावस्तु यद्यपि बहुत सीमित है तथापि उसके घटक तत्वों में नवीनता है। प्रथम दो सर्ग कवि की नवीन कल्पना से मंडित हैं। 'परिचय सर्ग' और 'स्वप्न-सर्ग' नवीन होते हुए भी नवीन, रुचिर कल्पना से मुखरित हैं। नवीन अभिव्यक्ति-शैली के विभिन्न सर्गो के वर्णन और रूपाकन को नीचे उद्धृत पद्यो में देखें—

(परिचय-सर्ग—नल सौन्दर्य वर्णन से सबद्ध)

"स्वर्गिक मेला तजकर परियाँ
घन - बीच छिपी - सी बसती थी
नल का सौन्दर्य परखने को
चपला के रूप विलसती थी ॥१२॥
तन - मादकता की लहरों में—
पड़कर सत्वर छिप जाती थीं
सौन्दर्यमयी लज्जावाली
क्षणभर ही नयन मिलाती थी ॥१३॥
किसके जीवन की गन्ध लिये
आता समीर मतवाला बन
अवगाहन करने को जी भर
किसके जीवन की धारा बन ॥१४॥
यौवन की मादक मार्गों पर
भावों के पक्षी आते थे
नव सरस पहेली का जीवन
संकेत मात्र दे जाते थे" ॥१५॥

[ऊषा-वणन]

"श्यामल अम्बर में वह लाली
प्राची की प्रभा दिखाती थी
सरसिज - विकास का समय सहज
मानस को अब समझाती थी ।।१६।।

पिंगल किरणों पर चढ़कर ज्यों
सुन्दरता आती निषध - देश
प्राची के नयनों को भाये
इसलिये सजाती विविध वेश" ।।१७।।

कवि का स्वप्न - सर्ग एक नई कल्पना भी है और मनोवैज्ञानिक भी । अनेक मनोवैज्ञानिको के मत से—विशेषतः "फ्रायड' के सिद्धान्तानुसार मानव के मन की कामप्रेरित भावनाये जो लोकवर्जना के कारण चेतनमन की वाणी में मुखर अभिव्यक्ति नही पाती है, वे मन की अवचेतन कक्षा में पहुँचकर स्वप्न के झरोखों द्वारा कल्पना - नयनों से मनोभव के चित्रो का अंकन कर लेती है । यहाँ भी नल का किशोर (एडोलसेट) मन पिता की सभा मे विदर्भ से भ्रमण कर आगत रसिक पथिकों के मुख से विदर्भ कुमारी दमयन्ती के अलौकिक सौन्दर्य के वर्णन मे कामासक्त हो गया । निषधराजकुमारी की यौवन - हाला से छलकते अनाघ्रात लावण्यसुरभित तारुण्य की मनोहारिणी-रूपनिर्झरिणी में बह गया । नल अपने आप को भूल गया । दमयन्ती के अनास्वादित मधुमय यौवन-रस के प्रवाह में डुबकी लगाने के लिए मतवाला हो गया । पर लौकिक वर्जनाओ के कारण वाह्य जगत में न आने के कारण वे काम की दमित वासनाएँ अवचेतन और अचेतन मन द्वारा स्वप्न में प्रकट हुई। यायावर पथिकों के वर्णन से भी अत्यधिक यौवन के छलकते रूपलावण्यरस को लेकर स्वप्न के चषकों में नल पीता है—

"अधरों के पथ से झाँक रही
मृदु - मधुर कपोलों की लाली
आशा में भर ज्यों खोज रही
मादक प्रिय चुम्बन की प्याली ।।६।।

कुछ सकुच नयन उन्मीलित - से,
दो मधुप त्याग ज्यों चंचलता
शशिगत सरोज में विलसित हों
बेसुध पीकर मधुमादकता ॥८॥

अधखुली सजीली बाँहों में
मधुसर की लहरित झलक रही
गति में उमड़ी नव राग लिए
आलिंगन की ज्यों ललक रही ॥९॥

लज्जा की भर मुस्कान मधुर
नल के समीप वह खड़ी हुई
नत - शिर मुख दक्षिण भुजा-ओर
मोहक उलझन में पड़ी हुई" ॥११॥

और जब पीछे मुड़कर सुमनों की माला लेने गई—
'पढ़कर ज्यों मन-मोहक टोना'—तब

"देखा नल ने मुड़कर चलते
वह काम - कलारस की बाला
ज्यों अंग - अंग से छलक रहा
यौवन की मदिरा का प्याला ॥१३॥

उरु युग लगते थे वसन - बीच
पग - चालन में मंथर गति से
दो लहरें काम - सरोवर में
करती क्रीड़ा उठ चल रति से ।१४।

....

जघनोरु भरित कल कसमस में
ज्यों काम - लहरियाँ खेल रही
वक्षःस्थल से कटि की लघुता
लख सहज मिलाती मेल रही ॥१६॥

लज्जा - सुन्दरता की क्रीड़ा—
चलने फिर लगी वहाँ मिलकर
व्रीड़ायुत मृदु मुस्कान लिए
वह प्रेम - भाव में रही सिहर ॥२२॥
मोहकता का जादू पढ़ती
ज्यों देव - लोक की परी चली
उसकी भोली नत चितवन से—
ज्यों सिद्धि लता की कली खिली" ॥२३॥

उस अचेतन मन ने नल के आत्मसौन्दर्य को भी मोहक बना दिया। आत्मसौन्दर्य की यह स्वकलना भी मनोवैज्ञानिक पक्ष रखती है—

"अपनी सुन्दरता भी नल को
सपने में मोहक लगी आज
सौन्दर्य - कला ज्यों रूप धार
मोहक भावों में रही राज" ॥२७॥

और इसी स्वप्न - भंग के पश्चात् मन की प्रलापावस्था में आकाशवाणी से नल को उस मनचाही सुन्दरी के मिलन का वरदान भी मिल गया। प्रथम 'परिचय सर्ग' में दमयन्ती के जो मादक यौवन और सौन्दर्य का वर्णन है, उसी का परिणाम 'स्वप्न सर्ग' है।

इसके बाद काव्य-कथा के प्रवाह में 'उपवन सर्ग' आता है जो अत्यन्त विशाल है—१६५ पद्यों का और इसमें प्राकृतिक सुषमा का लालित्यपूर्ण आधुनिक शैली में अत्यन्त मनोरम रूपांकन हुआ है। उपवन, कुसुम आदि के वर्णन भी सशक्त, सौन्दर्य बोधक, मुखरित और अभिव्यक्ति-लालित्य से ओत-प्रोत है। तत्पश्चात् हंस आदि की बातें आती हैं।

चतुर्थ 'हंस - गमन सर्ग'—हंस की दूत - यात्रा है। पंचम में 'दमयन्ती - हंस - संवाद है जिसके द्वारा नल का श्रवणज पूर्वराग आलंबन - आश्रयमूलक पूर्वराग में परिणत हो जाता है। सर्वत्र नायक - नायिका का सौन्दर्य—प्रत्यक्षतः परोक्षतः वर्णित है। यह वर्णन अत्यंत रमणीय है।

बाद के 'नल-चिन्तन' और 'दमयन्ती-चिन्तन दो सर्ग हैं। इन सर्गों का रस पाठक स्वयं पढ़ कर समझ सकते है। अनुराग, प्रेम, पूर्वरागज बियोग की दशाओं के वर्णन में प्रायः सभी आवश्यक अवयव इन सर्गो मे पिरो दिये गए है। सभी हृदयहारी एवं सरस है।

'स्वयवर साज सर्ग' अष्टम प्रकरण तथा 'स्वयवर सर्ग' नवम प्रकरण है। दोनों ही बहुत बड़े-बड़े तथा हृदयहारी वर्णनो से ओत-प्रोत हैं। रूप-चित्रों में लावण्य-मडन की कला कवि की अपने ढंग की निराली है। विभिन्न परिस्थितियो मे भाव-रूपो को बदलने और तदनुसारो रसों को भावपूर्ण ढग से रखने की कला कवि की सराहनीय है। बड़े प्रकरण में भी विभिन्न घटना-स्थलों को पहचान कर कवि ने अपनी स्वाभाविक भाव-तल्लीनता का परिचय दिया है जो पाठक को सहज रूप से आकर्षित कर लेती है। स्वयंवरार्थ मनोहर और उचित सजावट की विशेषता से 'स्वयवर-साज सर्ग' 'स्वयंवर सर्ग' से अलग कर दिया गया है। 'स्वयंवर सर्ग' स्वयं अपने मनोरम भाव-चित्रों के कारण चित्ता-कर्षक है। इन दोनों सर्गों को भावपूर्वक पढ़ने से ही भावो की गहराई तथा सरसता का पता चलता है।

आगे 'शान्ति-विलास' सर्ग है। यह सर्ग विशेषरूप से कुछ दृष्टियों से पठनीय है। इसमें भी सरस प्रकृति-वर्णन है। मिलन की मादक कल्पना भी वहाँ अत्यत सहज पर अत्यत उत्कंठामयी एवं मूर्च्छनाकारी है। श्रीहर्ष के 'नैषधीय चरितम्' में प्रथम रति-मिलन का वर्णन घोर श्रृंगारी है। आज के युग मे उसे अश्लील भी कहा जा सकता है—पर जिस रीति काल में बड़े-बड़े महाकवियों ने सभोग-श्रृंगार के वर्णन में 'विपरीत रति' के नग्न वर्णन को 'अश्लील' नही माना—उस परम्परा के पूर्वज 'श्रीहर्ष' का प्रथम समागम-वर्णन अश्लील न होकर यथार्थ पर आधारित उद्दाम श्रृंगारी संभोग का शब्द-चित्रांकन है। उसको मैं उद्धृत कर रहा हूँ—पर हिन्दी अनुवाद लिखने में युग-बोध के कारण लेखनी मूक रह गई। पाठक स्वयं पद्य का हिन्दी अनुवाद 'नैषधीय चरितम्' के हिन्दी अनुवादसहित ग्रन्थ से देख ले—

"अस्तिवाम्यभयमस्ति कौतुकं सास्ति धर्मजलमस्ति वेपथु
अस्तिभीति रतमस्ति वाञ्छितं प्रापदास्ति सुखमस्ति मैथुनम्"
नै. सर्ग १८, श्लोक ६२

पर यहाँ इस सर्ग में तथा आगे के दो सर्गों (सान्ध्य विहार और प्रात विहार) में ऐसा कुछ नही है। सान्ध्य विहार और प्रात विहार—दोनों सर्गों का नाम 'निसर्ग-दर्शन' सर्ग भी है। दमयन्ती और नल को कायिक भोगों का बहुत अवसर और बहुत आनन्द मिला—पर वे जान गए कि उनमें स्थायित्व नही है, क्षणिकता है और अन्त में शैथिल्य और ऊब भी है—

"नल दमयन्ती को भोगों की
माया अवसर पर खूब मिली
पर अन्त निरन्तर भोग-भरी
कायिक गति पर कटु ऊब मिली ॥५॥
दोनों रहस्य यह समझ सके
आपस में भोग विलासों से
कायिक भोगों में तृप्ति कहाँ
जो मिल ले सुखमय श्वासों से" ॥६॥

वे जान गए कि काम-भोग की लालसा अतर्पणीय है। तृप्तिदायी नही है। ठीक ही कहा है—

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति'

दोनों के चित्त में पावन भावों का उदय हो गया। फलतः—

"शुचि प्रेमभरे साधन पथ पर
नल दमयन्ती के भाव मिले,
अपनी दर्शन-रेखाओं में
चित्रित निसर्ग-छवि-भाव भले" ॥१२॥

दोनों की जीवन-कला प्रकृति-सुषमा के साथ एकीभूत हो विलसने लगी—

'हे देवि ! जीवन की कला सचमुच प्रकृति में विलसती,
शृंगार की मादक छटा, अनुराग-घन से बरसती
मुस्कान चपला-भाव में, नव रूप पर जो निरखती,
वह कौन जिसको लालिमा, शृंगार पाकर परखती' ॥२३॥

इसी प्रकार प्रकृति के साथ रहस्यमयी प्रेम-भावना में परोक्षतः रहस्यवाद की भी झलक मिल जाती है।

आगे सन्ध्यासुन्दरी की सुषमा का स्वच्छन्दतावादी शैली में कवि ने अच्छा वर्णन करते हुए दम्पती के भाव-जगत से उसे मिला दिया है।

'अम्बर - परिधान पहन श्यामल
फहरा मादक छवि क्षितिज - छोर
ज्यों सन्ध्या - श्री अञ्चल पसार
उनको पुकारती विभा - ओर' ॥२७॥

'प्रात बिहार सर्ग' 'सान्ध्य विहार सर्ग' का अनुगामी भी है—दोनो प्रकृति-सौन्दर्य देखकर मद-विह्वल हो जाते है। दमयन्ती कहती है—

"बोली दमयन्ती,—'नाथ ! आज, यह प्रात कला की उजियाली
मधुमयी नवागत लाली से, क्या भर देगी रस की प्याली ?
क्या उसी नशे मे चूर आज, प्राची से गठबन्धन होगा ?
अच्छा होगा तब मंत्र बोल, मेरा भी शुभ वन्दन होगा।
छा गई मधुर मुस्कान - विभा, मुखमंडल के व्यापारों में।
भर गए युगल आलिगन में, बज उठी रागिनी तारों में।"

इस प्रकार इन दोनों सर्गो (सान्ध्य विहार और प्रात बिहार) की कथा में चिन्तन, विहार, सहज भोग और प्रकृति के उद्दीपन विभाव का सहज स्फुरण भी है और विचार-प्रवाह भी है।

इस ग्रन्थ का निसर्ग-दर्शन-सर्ग (प्रातः विहार) सचमुच ही निसर्ग की, प्राकृतिक सौन्दर्य की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करता है। कवि के भावुक हृदय ने प्रकृति के रमणीय चित्रों को छायावादी अभिव्यक्ति-शैली में भी चित्रित किया है, जिसमें लाक्षणिक वक्रता,

आलंकारिक रमणीयता, अर्थगत ललित व्यंग्यार्थ तथा अभिव्यजनीय लालित्य है। कुछ उदाहरण उपर्युक्त कथन की स्वतः पुष्टि करेगे।

'सस्मित आनन की किरणों से—
मधुता सुमनों की खिलती - सी
चल दृष्टिपात के भावों से
मधुपों को प्रियता मिलती - सी' ॥५॥

रंगीन विभा में खिलती नव—कलिकाओं का आभार मान
दम्पति - यौवन-छवि-लहरो से, मिलती बयार मधु प्यार जान ॥

ऊषा के सौन्दर्य - बोध को मानवीकरण की अभिव्यक्ति-प्रक्रिया द्वारा कवि ने अत्यंत मनोरम बना दिया है—

'आनन्दमयी उस लाली में, वह विभा उमडती किस स्वर में ?
अन्तर - रेखायें चल पाती, होकर विभोर किसके तल में ?॥१५॥

अम्बर की बाँहों में भूली
किसकी सुध में नित आ जाती,
आकर प्रभात की विभा बाँट
सन्तोष कहाँ वापस पाती ?॥१६॥

प्रिय प्रेमभरी तव बाँहों में, मै भी प्रभात छवि पाऊँगी
अपने जीवन का वैभव दे, सन्तोष-लाभ उर लाऊँगी। १७॥

आगे की कुछ पंक्तियाँ इतनी काव्यमयी हैं कि उनके उद्धरण का मोह मैं रोक नहीं पा रहा हूँ—

'रंगीन विभा में हँसती वह, निज सतत मोद में माती-सी।
ऊषा सुराग भर प्रकट हुई, प्रियतम-हित लिए आरती-सी ॥१६॥

'कल पक्षी पंक्ति बाँध सुन्दर
माला की भाँति उड़े चलते
तरु - राजि छटा के ऊपर से
अम्बर छवि - ग्रीवा में लसते ॥१६।

प्यारी छाया को उर समेट, तरुवर सोए जो जगत भूल
कलरव कर पक्षी जगा रहे, समझा लज्जा के पाठ मूल'

यह पूरा का पूरा सर्ग कवि के नैसर्गिक भावुक भाव-बोध का साक्षी है। कहीं-कहीं कवि छायावादी ढंग से जिज्ञासा भी कर बैठता है—

'प्रियतम, यह भ्रम होता होगा, वह ऊषा में लाली क्या है ?
भरती पराग कलिकाओं में, वह यौवन-मतवाली क्या है ?' ॥२७॥

इस सर्ग के सरस भाव-बोध के मधु का पान सर्ग को पढ़कर ही पाठक कर सकते हैं।

'भ्रमण-दिवस सर्ग' भी इसी प्रकार भ्रमणार्थ लालित्यपूर्ण रथ पर जाते हुए नल-दमयन्ती की यात्रा का वर्णन करने में कवि बार-बार भावुक हो उठा है। नागरिक जनों की भावना, नगर की सुख-समृद्धि, सौन्दर्य-कला सबका दर्शन हुआ। आगे चलकर महाराज नल के हृदय को राग से विराग की ओर उन्मुख करने के लिए कवि ने नदी के कगार पर श्मशान घाट की ओर रथ को मोड़ दिया। नल ने शारीरिक और मासल सुखभोगी कलेवर की करुणाजनक और अवश्यंभावी गति तथा अन्त देखकर विराग से भर गया। वहाँ मृतक कलेवरों का यथातथ्य वर्णन यथोचित शैली में मिलता है, जो पठनीय ही नहीं बल्कि सवेदनशीलता के साथ विचारणीय भी है। राजा-रानी दोनों के भाव वहाँ बदल जाते है—

'दमयन्ती भय-भ्रम-घृणा-भरी, वह दृश्य देखकर काँप उठी
गत-भोग-दृश्य क्षण सोच भभर, भय की वह कटुता नाप उठी
वैसी ही छाया नृप-उर में, छा गई सोच वैभव विलास
परिणाम परख नश्वरता का, क्षणभगुर जीवन से निराश'।

वहाँ से आगे बढ़ने पर प्रकृति के मनोरम दृश्यों में उन्हें शान्ति मिलती है, जहाँ—

'संगीत-भाव दैवी लेकर, मन-मुदित विहग तरु डाली पर
राजा के स्वागत-गान हेतु, गा रहे भाव प्रिय खाली भर'

वहाँ से आगे बढ़ने पर जादूगर के कुछ विलक्षण तमाशे मिलते हैं। यहाँ के अद्भुत दृश्य अनेक काव्य-रसों की पुष्टि करते हुए पाये जाते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने महाकाव्यीय गरिमा के अनुसार कुछ अवशिष्ट रसों की पुष्टि के लिए ही यह स्थल सामने रखा है।

वहाँ से स्व-समाज-सहित राजा का रथ प्रकृति के बीच खेत में काम करते हुए किसानों के समक्ष पहुँचता है। एक प्रजा-पालक तथा जन-प्रिय राजा को प्रजा के बीच तक पहुँचना उसका कर्त्तव्य भी होता है। यहाँ किसानों की तन्मयता और उनके उत्साह-भाव से कुछ प्रगतिवादी दृश्य-द्योतन भी हो जाता है। वहाँ से रथ बीहड जंगल की ओर मुड़ जाता है। वहाँ राजा नल ने तो सिह का बध किया, किन्तु क्रुद्ध सिंहनी का बध यदि उस समय दमयन्ती न करती तो वह राजा को दबोच बैठती। दमयन्ती भी शील-सौन्दर्य-सम्पन्न एक वीरांगना के रूप में सामने आती है।

वहाँ से 'विगतपुरी' की यात्रा कवि की एक बहुत ही विलक्षण कल्पना है। यह एक अति प्राचीन नगर जो ध्वंसावशेष मात्र पड़ा हुआ दिखाया गया है। यहाँ खंडहरों के भिन्न-भिन्न अगों का वर्णन कवि ने इतनी भावुकता के साथ किया है, जिसे पढ़कर सहृदय पाठक भाव-विभोर हो सकते हैं। उदाहरण-स्वरूप आगे कुछ पंक्तियों को देखिये—

कवि [illegible] सरोवर की दुर्दशा देखकर उसकी कोमल और उदास लहरों का वर्णन करता है।

मृदु लहरें टूट उरोजों से—
पंकज - कलिकाओं से मिलती
उमड़े यौवन के भावों में—
कुछ मदिर कथा कहकर हिलतीं
अब काई के भीतर से ही
लहरें हिल करुण कथा कहतीं
हा! तिरते कमठों से टकरा
सिसकी भर मौन व्यथा सहतीं।

इसी प्रकार के तमाम वर्णन भरे पड़े हैं। आगे एक स्थान में आये चित्रों के देखिये—

'मणि-दीप-कला में रस-विभोर, छवि झमक झरोखों से चलती।
चन्द्रिका-कलित घनश्याम-पास, चपला का आलिंगन करती।
तम-भरी अँधेरी रात वही, जुगनू के दीपक पर रोती।
लघु चल प्रकाश से आशा तज, दुखभरी निराशा में सोती।
शशि-कला-प्रभावित नयनों से, प्रेमी चकोर तब सुख पाता।
घन-केश-राशि, शशिमुख-छवि पर, न्योछावर तन मन हो जाता।
अब वहाँ खूसटों के स्वर में, चमगादड़ का सहभाव रहा।
चपला जैसे अब भय भरती, शशि करता ज्यों उपहास महा'।

इस ध्वंसावशेषित नगर की कल्पना तथा भाव कितने मार्मिक हैं, पाठक पढ़कर ही समझ सकते हैं। इस स्थल की पंक्तियाँ प्रायः सभी उद्धरण-योग्य है, किन्तु बहुत न कहकर एक और उदाहरण दे रहा हूँ देखिये—

'हा ! जहाँ सजावट मोहित हो, कोमल आलिंगन से मिलती
जग की सुख-सीमा सिमट मधुर, क्षण-क्षण मिलने को दम भरती
अब नकुल-नाग के युद्ध-बीच, भय से तृण-जाली काँप रही
झटकों से आहत होकर नित, चिंतित उदास-सी हाँफ रही'

इस सर्ग में अनेक रोचक और उद्वेजक उभयविध चित्र देखने ही लायक हैं। इसमें आगे दार्शनिकता की ओर उन्मुखीकरण है—

'संसार इसी का नाम जहाँ, संसरणशीलता नाच रही
रच-रचकर फिर ध्वंसित कर, हा ! निज करुण कहानी बाँच रही'

यह पूरा का पूरा सर्ग पंचकलात्मक 'हंस-प्रदीप' की आधारशिला या पूर्वपीठिका है, जिसके जिज्ञासा-स्वरूप आधार पर गूढ़ से गूढ़ जीवन-रहस्यों का स्पष्टीकरण हो सका है। अधिकारी जिज्ञासु के समक्ष ही गूढ़ तत्वों का निरूपण होना चाहिये। यह 'भ्रमण-दिवस सर्ग' राज-सुख-भोगी दम्पति को अधिकारी जिज्ञासु बना देता है। धीरे-धीरे जीवन के रंगीन भौगिक दृश्य समाप्त हो गये और नल-दमयन्ती दोनों विषयों से निराश हो चले—

हंस-प्रदीप सर्ग का प्रारम्भ ही कवि पूर्वसंकेतित आधार-शिला से प्रारम्भ करता है—

'नल-दमयन्ती का नव यौवन, रुकने वाला फिर कहाँ भला,
जीवन के अम्बर से होकर, आशा-पथ से उस पार चला'।

जीवन-रस का आधार चला गया, अब रस की प्याली किससे माँगें—

'यौवन आकर फिर चला गया, तन-भोगों की लेकर लाली,
आशा कर मलती खड़ी रही, किससे माँगें रस की प्याली'?

नल और दमयन्ती दोनों प्रातःकाल उपवन में टहल रहे थे। पतझड का समय था। दोनों जीवन के पतझड में बाहरी पतझड का राग मिला ही रहे थे, तब तक हंसराज अपने दल के साथ आकाश-मार्ग से उपवन में आ पहुँचा। यथोचित सत्कार के पश्चात् पत्रासनों पर हंसों की सभा बैठी। रानी के संकेतानुसार और स्वकीय अन्तरोद्भूत शंकाओं के आधार पर राजा ने प्रश्न रखना प्रारम्भ किया। यही समाधान-स्वरूप हंसराज का प्रवचन पाँच कलाओ में विभक्त है।

हंस का एक अर्थ नीर-क्षीर-विवेकी, संसार के कर्दम-कलुष से मायाहीन तत्त्वदर्शी भी होता है। विरक्त, ज्ञानी, त्यागी और ममताजयी महापुरुषों को इसी कारण परम हंस कहा जाता है। इसी कारण इस पंच कलात्मक 'हंस-प्रदीप' मे ज्ञान, दार्शनिक चिन्तन, संसार की असारता और जीवन के चरम लक्ष्य का विवरण दिया गया है। यहाँ कवि के व्यक्तिगत चिन्तन तथा उसकी विवेक-दृष्टि का पता चलता है। कर्म-ज्ञान तथा उपासना आदि सभी आध्यात्मिक मार्गो का दिग्दर्शन समुचित रूप में मिलता है। फिर भी चरम गन्तव्य सबका एक ही है।

'गन्तव्य सभी का एक परम
उस तक चाहे जैसे हो लें।
उस परम ऐक्य की धारा में—
समुचित चाहे जैसे बह लें॥२३॥

सम्पूर्ण 'हंस-प्रदीप' अपने में अनूठा है, जिसमें जीवन की भ्रमात्मक शंकाओं का समाधान मिल जाता है। यह पंच कलात्मक हंसराज का प्रवचन सचमुच ही हंस का प्रवचन है। इसकी

महानता तो जीवन-साधना करने वाले अधिकारी साधक ही समझ सकते हैं। भव-चक्र में भ्रमित संकटापन्न जीवन के लिए इसमें पथ और पाथेय दोनों प्राप्त हो जाते है। इसकी पंक्तियाँ तो प्राय: उद्धरण-योग्य ही हैं, परन्तु एक उदाहरण देखिये और उसकी गहराई पर विचार कीजिए। कवि ने दिखाया है कि मानव अपने ही मिथ्याहंकार-तम से ग्रसित अन्तकरण को इतना मलिन बना डाला है कि वह अपने ही जीवन-सर्वस्व परमानन्द-स्वरूप परमात्मा का ही पता नहीं लगा पाता—

"चलने से ही प्रिय छिप जाता
मुड़ अहंकार की गलियों में।
रुकने से ही वह मिल जाता
निर्मल अन्तर की थलियों मे" ।।

ठीक ही है, परमात्म-मिलन के लिए अन्त:करण की निर्मलता परमावश्यक है। अहंकार के पोषण में मनुष्य कलमष-रचना करता जाता है और यह भी सत्य है कि अहकार की छत्र-छाया में चाहे जो भी सिद्धि मिले, परन्तु अन्त में अपनी नही सिद्ध होती—

"निज अहंकार के पोषण मे
जीवन करता कलमष - रचना।
चाहे जैसी भी सिद्धि मिले
उसमें न कही कुछ भी अपना" ।।५९।।

कवि का आनन्दवादी विचार अन्त मे घूम-फिर कर सभी मार्गों से शाश्वत आनन्द-स्वरूपता तक पहुँचता है। अपने अन्दर उस आनन्द-कंद परम प्रिय को परख लेने पर बाहर भी उसी की रसमयी झाँकी मिलती है।

'बाहर भी वह रस - भाव-रूप
नाना रंगो में बरस रहा।
पीने वाला जो परख सका
उसका ही जीवन सरस रहा ।।'

साथ ही साथ यह भी सत्य है कि ससार की विषय-वासना उसकी प्राप्ति में बाधक होती है। उस दिव्य झलक के पश्चात् वासना बचती भी नहीं।

"संसार - वासना गल जाती
आनन्दमयी प्रिय मधुता में।
जीवन का सबकुछ मिल जाता
सर्वस्व त्याग की लघुता में।।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि हंसराज के उपदेश में बाह्य रूप से संसार-त्याग की बात नहीं कही गई है। परमार्थ के आगे व्यवहार को उड़ा नहीं दिया गया है, बल्कि व्यवहार-साधना के बीच से ही परमार्थ-साधना का संकेत है। देखिये लोक-सेवा का कितना सुन्दर संकेत है—

"पर-हित में निज हित पहाचानें
घन - सी अपनी जीवन-गति कर
धरती पर सबकी प्यास बुझा
प्रिय से मिल लें सरिता के स्वर ।।५-१४८
सेवा में ही वरदान छिपा—
प्रभु का, जिससे शुचिता मिलती।
सेवा-पथ में अनुकूल बनी—
जग - लीला निज स्वागत करती" ।।५-१४९

व्यवहार-क्षेत्र में भी उद्योग - समर्थक तथा मानवता-प्रेमी कवि ने कर्त्तव्य-परायणता का संकेत किया है।

'कर्त्तव्य - काल जो अपना है
उसमें न कहीं आलस्य करे
जग - भोग - बीच ही योग परख
मानवता का प्रिय भाव भरे" ।।५।।

पंचकलाओं से विभूषित इस 'हंस-प्रदीप सर्ग' में कवि काव्यात्मक शास्त्र के प्रणेता-रूप में सामने आया है। इसमें भारतीय दर्शन-बोध तथा जीवन की गहन अनुभूतियाँ सराहनीय हैं। इस अंश को कवि अलग काव्य-शास्त्र के रूप में भी सँजोया है, जो भविष्य में जीवन-साधकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

सम्पूर्ण 'हंस-कलाधर' का अध्ययन करने के पश्चात् मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि युगानुसार हिन्दी-साहित्य में एक आवश्यक महाकाव्य का आगमन हुआ। काव्य-रस तथा भावुकता की दृष्टि से तो यह अतिशय आकर्षक है ही, साथ ही साथ व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दृष्टिकोणों से भी महत्त्वशाली है, इसलिये यह महाकाव्य हिन्दी-समाज के लिए अभिनन्दनीय और स्वागतार्ह है। एतदर्थ मै कवि को बधाई देता हूँ और उसकी भावी प्रगति के लिए मंगल कामना करता हूँ।

वाराणसी—
गुरु पूर्णिमा—सं० २०४४ वि०

करुणापति त्रिपाठी
भूतपूर्व—कुलपति
सं० विश्वविद्यालय, वाराणसी
अध्यक्ष—उत्तर प्रदेश
संस्कृत अकादमी, लखनऊ।

श्री राम

आत्मनिवेदन

मानव-जीवन की यात्रा प्राणि-जगत में सर्वोत्तम कही जाती है। फिर भी इसमें दो बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। पहली बात तो यह कि जीवन-पथ में उत्तम से उत्तम सहारा होना चाहिये, जिससे शांति, सन्तोष और आनन्द की प्राप्ति होती रहे और दूसरी बात यह कि जीवन की गति उत्तम गन्तव्य की ओर होनी चाहिये। जीवन के लिये बहुत से उत्तम तथा श्रेयस्कर गन्तव्य हो सकते हैं, परन्तु परमात्म-मिलन सर्वोत्तम गन्तव्य माना जाता है। परमात्म-मिलन ही परम पुरुषार्थ है। पथ के उत्तमोत्तम सहायक संबलों में काव्य का स्थान सर्वोपरि है। काव्य के सहारे जीवन-पथ पर चलने वाला व्यक्ति शीघ्र ही उस दिव्यता को प्राप्त कर लेता है, जिससे परमपुरुषार्थ की सिद्धि होती है। इसीलिये काव्य की महिमा लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टिकोणों से सराहनीय होती है।

भावाभिव्यंजन जो रसानुभूति करा सके, वही काव्य का स्वरूप धारण कर सकता है। उस भावाभिव्यंजना से होकर विशुद्ध भाव-दशा या रस-दशा तक पहुँचने के लिये व्यक्ति को राग-द्वेष तथा स्व-पर के ऊपर उठना पड़ता है। राग-द्वेष का ऐनक लगाकर देखने से मनुष्य संसार की सुख-दुःखात्मक अवस्था को ही प्राप्त होता है। आनन्द अपने शुद्ध रूप में ऐसे द्वन्द्वों के ऊपर होता है। विशुद्धआनन्द या परमानन्द तक होने के पहले द्वन्द्वात्मक जागतिक लीला को भी हृदय की मुक्तावस्था से देखने पर द्रष्टा की भूमिका बदल जाती है। जब संसार की परमात्म-रचित लीला रस-सिद्धि के साथ परमानन्द-संकेतिका के रूप में दिखायी देने लगे तो मुक्त हृदय की वही भूमिका वास्तविक मधुमती भूमिका होती है।

काव्य की आत्मा का नाम रस है। रसोद्भूत आनन्द ही काव्यानन्द कहलाता है। काव्यानन्द और ब्रह्मानन्द में बुनियादी भेद नहीं होता। ब्रह्मानन्द निरपेक्ष और स्वयं में पूर्ण होता है, जिसका अनुभव योगी जागतिक प्रपंचों के ऊपर उठकर समाधि में करता है। वही आनन्द जब हृदय के रसात्मक भावों से परावर्त्तित होकर आता है, तो काव्यानन्द कहा जाता है। इसीलिये काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा गया है। भावों की धारा जब राग-द्वेष की ऊबड़-खाबड़ तथा कंकरीली-पथरीली भूमिका पार करके हृदय की समतल भूमि पर रस-रूप में प्रवाहित होती है तो वही काव्यानन्द के दर्शन कराती है और वही धारा आगे चलकर ममताभिमान के युगल कगारों को त्याग परमानन्द के जीवन-समुद्र में मिल जाती है।

मानव-हृदय में निवसित स्थायी भाव राग-द्वेष के साथ चलने पर बन्धनकारी होते है, जिससे वह सुख-दुःख तथा मोह के ऊपर नहीं उठ पाता। वे ही भाव जब स्व-पर के ऊपर उठकर हृदय की मुक्तावस्था में अपने सजातीय रसों से सिक्त हो जाते हैं तो उनसे रस-दशा या आनन्द-दशा की प्राप्ति होती है। काव्य-रस की पुनीत धारा में श्रद्धा के साथ गोता लगाने पर दानवता भी मानवता में बदल जाती है और मानवता परम दिव्यता को प्राप्त होती है, जिसके सम्मुख परमानन्द या ब्रह्मानन्द का द्वार सतत् निरन्तर खुला ही रहता है। इसीलिये काव्य एक ओर भोगी को भोगों से ऊपर उठाकर योगी बनने में सहायक होता है और दूसरी ओर योगी को भी संसार में रहने का सर्वोत्तम सहारा बन जाता है।

जगत की परिवर्त्तनशील लीला से ही भावों का ग्रहण होता है। स्थिरता में लीला की कोई कल्पना नही की जा सकती। संसार परमात्मा की लीला है। क्षण-क्षण परिवर्त्तनशीलता ही इस लीला की गति है। मानव-हृदय इस लीला से भाव ग्रहण करता है, परन्तु दोष यह है कि वह लीला को लीला नहीं समझता। उसे वह सत्य समझकर उसमें अपना राग-द्वेष मिलाकर सुखी तथा दुःखी होता रहता है। लीला तो सुख-दुःखात्मक होती ही है, परन्तु उसकी हर गति-विधि से रस ग्रहण करने की भूमिका ही कवि की

भूमिका होती है। इस लीला-प्रदर्शन में व्यक्तिगत राग-द्वेष के ऊपर उठकर रसानन्द की दशा में रमने वाला भावुक व्यक्ति ही अधिकारी कवि होता है। मंच पर अभिनेता विभिन्न परिवर्त्तन-शील मुद्राओं से अपना अभिनय दिखाता है। दर्शक के हृदय को रस-भाव ग्रहण कराने के लिये ही उसका प्रयास चलता है। यदि कोई दर्शक राग-द्वेषवश किसी मुद्रा विशेष को पकड़ना चाहे, तो वह अपने भ्रामक मोह के कारण दुःख और अशान्ति को ही प्राप्त होगा। यही कारण है कि विषय-वश्यता मानव के लिये अभिशाप बन जाती है।

बाहर की चलती लीला में व्यक्ति को आकर्षित करने वाला लीलाधर सर्वदा विद्यमान रहता है। उस लीलाधर को जागतिक विषयों में अनुपस्थित समझकर ही तो व्यक्ति अपने को वास्तविक कर्त्ता तथा भोक्ता मानकर दुःखमय जीवन व्यतीत करता है। उस परम प्रिय की व्यापकता यदि आत्मानुभूति में उतर आये तो अशान्ति और असन्तोष का कोई कारण नही रह जाता। जैसे कोई नर्त्तक अपने नर्त्तन की नाना आंगिक मुद्राओं में विद्यमान रहता है, वैसे ही लीलाविहारी परमात्मा संसार की हर लीला में उपस्थित है। व्यक्ति अपनी अहंतावश बाहर चलती हुई मनोहर लीला का रसास्वादन न करके अपनी भयंकर इच्छाओं का मोहमय दुःखद जाल बुनकर अपने ही को फाँसता जाता है। मोहवश नाना प्रकार के दुःखों और भ्रान्तियों का चिन्तन करता हुआ मानव मृत्यु का जीवन जीता है। मानव-शरीर पाकर व्यक्ति को आनन्द का जीवन जीना है। प्रारब्ध को प्रबल जानते हुए भी उसके हर प्रकट फल से अनुकूल रस खीच लेने वाला व्यक्ति ही काव्य की दिव्य भूमिका का पारखी होता है। यदि महल है तो उसका आनन्द ले और यदि महल नहीं है तो अपनी फूस की झोपड़ी में उतना ही आनन्द ले। यदि वह भी नही है तो वृक्ष के नीचे शीतल मन्द तथा सुगन्धित हवा का आनन्द लेते हुए डाली पर बैठे गगन-विहारी पक्षियों के कलगान में अपने हृदय की तान मिलाये, वही काव्य की दिव्य भूमिका का पारखी हो सकता है। वास्तविक आनन्द

तो धनैश्वर्य तथा वैभव की गोदी में नहीं मिलता। वह तो प्रकृति की रसमयी गोदी में मिला करता है। अयोध्या के महलों से निकल कर राम यदि जंगल में भी महल बनवाकर (जैसा कि वे करने में सक्षम भी थे) मोटे मखमली गद्दे पर विश्राम करते तो वे अनागारिक तुलसी दास की काव्य-भूमिका से बहुत दूर होते। जंगल में नदियों और पहाड़ों के बीच भ्रमण करने पर उनका आनन्द परिपूर्णरूप से बना ही रहता है। कुश और साथरी पर सोकर राम ने सन्तोष की सहज भूमिका निभायी। सीता जैसी जीवन-संगिनी के हर लिये जाने पर भी राम का जो धीरज सामने आता है, वह धैर्य्यवानो के लिये आदर्श है। ऐसी विषम परिस्थिति में भी अपने अदम्य उत्साह से समुद्र में पुल बँधवाकर तत्पश्चात् राक्षसों की नगरी का भली-भाँति संहार करके साध्वी सीता को पुनः वापस ले आने वाला साहस धन्य है। सीता के उद्धार के साथ धरती का भी उद्धार देखकर आज भी पाठक साहस और उत्साह से भर जाते हैं। इस प्रकार जीवन की हर परिस्थिति में आनन्द, मस्ती धीरज और उत्साह बना रहे, वही है जीवन जीने की भूमिका।

काव्यगत सभी सुख-दुःखात्मक घटना-क्रमों में पाठक जो रस ग्रहण करता है, वही भगवान की रची हुई सांसारिक लीला के अन्दर भी रसास्वादन का अभ्यास है। हृदय अपनी निर्मल अवस्था पर राग-द्वेष के ऊपर उठ जाता है, तब वह व्यावहारिक लीला में भी वैसे ही रस प्राप्त करता है, जिस प्रकार काव्यगत चित्रित लीला में। यही हृदय की मुक्तावस्था है। हृदय की यह दिव्यावस्था जब काव्यजगत से होकर व्यवहार-जगत में भी अपनी भूमिका निभा सके तो वही भाव-साधना की सफलता भी है। गोस्वामी तुलसी दास ने यह दिव्य भूमिका राम के जीवन में उतारी है। पाठक अनेक सुख-दुःखात्मक घटना-क्रमों की भावमयी लीला देखकर जब रामचरित के दिव्य मानस में गोता लगा लेता है तो वह भी उस निर्मलता को प्राप्त होने लगता है, जिससे सत्याधारित आनन्द की झलक मिल पाती है। ऐसे निर्मल हृदय की यात्रा सत्कर्म, परोपकार तथा लोक-कल्याण के दिव्य मार्गों से सम्पन्न होती है, वहाँ स्वार्थ-केन्द्रित व्यक्तिगत फल को महत्त्व नही मिलता।

मानव-जीवन का प्राप्तव्य लक्ष्य आनन्द ही होता है, परन्तु वह भ्रामक विषयों की भूल-भुलैया में पडा उसका वास्तविक द्वार नही पकड़ पाता। सौन्दर्य आनन्द का एक उत्तमोत्तम द्वार है, परन्तु व्यक्ति वहाँ स्वयं अपवित्र और असुन्दर भावों के साथ पहुँचता है, इसलिये उसको प्रवेश नहीं मिल पाता और फिर उसे लौटकर इसी मोहमय भ्रमात्मक-प्रपच में आना पड़ता है। वास्तविक सौन्दर्य तो वह है, जिसे देखने पर मन की वासना ही समाप्त हो जाये और उस अमन अवस्था में भीतर से आनन्द की किरणें उतर आयें। वासना की दृष्टि से देखा हुआ सौन्दर्य परिणाम में दु:खद और मोहयुक्त होने के कारण बन्धनकारी भी होता है। सौन्दर्य देखने की दृष्टि तो वह है, जिसमें मन स्वयं अपने अहंकार का आसन छोड़ दे और निर्वासनिक अवस्था प्राप्त करके आनन्द-सरोवर में गोता लगाने लगे। सवासनिक दृष्टि को निर्वासनिक अवस्था तक पहुँचाने का सर्वोत्तम साधन प्राकृतिक सौन्दर्य है। घन-घटा के सौन्दर्य पर मयूर वासना के ऊपर उठ जाता है और मतवाला होकर नाचने लगता है। वृन्दावन के कुञ्जों को मीरा जब अपनी प्रेमभरी आँखों से देखती थी तो वह जागतिक वैभव के ऊपर उठ कर अलौकिक आनन्द में आत्म-विभोर होकर नाचने लगती थी। लौकिक वासना रखने वाले लोगों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे मीरा की उस भूमिका को समझ सकेंगे। वृन्दावन की प्राकृतिक छटा में घनश्याम की छवि देखने वाली आँखें दूसरी ही होती हैं। मनमोहक वंशी-ध्वनि सुनने वाले कान भी कुछ दूसरे ही होते हैं। वह सौन्दर्य ही क्या जो मन को हर न ले। मन ही तो जीव का बन्धन है। मन जहाँ सवासनिक अहंकार के आसन से हटा वहीं से जीव को स्वरूपानन्द की किरणें उतरती हुई प्रतीत होती हैं। इसीलिये तो कोटि मनोज लजावनिहारे राम ने अपने सौन्दर्य के दर्शन का फल बतलाया है—

'मम दरसन फल परम अनूपा, जीव पाव निज सहज सरूपा'

परमात्मा का असीम सौन्दर्य प्रकृति के अन्दर व्याप्त है। इस रहस्य को आन्तरिक भावों से बूझने वाला व्यक्ति ही वाल्मीकि और कालिदास की कक्षा में पहुँचता है।

वास्तविक सौन्दर्य की भूमिका तो प्रकृति के अन्तर्गत ही मिलती है, उसमें अन्तःकरण को जो दिव्यता की झलक मिलती है, उसका संकेत परमशान्ति और परमानन्द की ओर होता है। घन की घटा देखकर जिसका मन-मयूर न नाच सका, चन्द्रमा की मधुर मुस्कान पर जो चकोरवत आत्म-विभोर न हो सका, कोयल की मतवाली ध्वनि सुनकर जो वासन्ती के भावों से भर नहीं गया, मकरन्द-माधुर्य-सम्पन्न नव विकसित सुमनों पर प्रेम-प्रपूरित भ्रमरों के 'गुन-गुन' स्वर में अपना आन्तरिक स्वर न मिला सका, शान्ति-सकेतिका तथा दिव्य भावोद्भाविनी देव-नदी गंगा की मतवाली लहरों पर लहराते जल-पक्षियों को देखकर जो जलशायी विष्णु के दिव्य दर्शनों की कल्पना न कर सका, उसके हृदय को पत्थर ही समझना चाहिये। प्राकृतिक छटा जिसको आलम्बन-रूप से आकर्षित कर सकी, वही उस सात्विक दिव्य सौन्दर्य-भूमिका का अधिकारी हुआ। वासनाजनित एकांगी प्रेम वाले व्यक्ति भले ही नायिका के विभिन्न अंगों तथा आभरणों के उपमान बाहर प्रकृति में ढूँढ़ कर अपने को धन्य समझे, परन्तु उनसे उस दिव्य सौन्दर्य-परख की आशा नहीं की जा सकती। बासना का बन्धन तोड़कर ससीमता से ऊपर उठकर असीमता की झलक दिखाने वाली छवि और ही होती है, कामान्ध विषयी जनों से सीधे उसकी आशा नहीं की जा सकती। हाँ, उनको उस दिव्य पथ का पथिक बनाया जा सकता है, यह कार्य भी सर्वाधिक काव्य-साध्य ही होता है। शारीरिक सौन्दर्य-परख की रागमयी दृष्टि जब निर्वासनिक भावों का ऐनक लगाकर प्रकृति के झरोखे से परम छवि की झलक पा जाती है, तो वह कृतार्थ हो जाती है। इस काव्य-ग्रन्थ में इस अकिंचन द्वारा ऐसी ही भूमिका के निर्वाह का बाल-प्रयास है। मांसल सौन्दर्य का क्या परिणाम होता है, तथा जगत-वैभव अन्त में किस गति को प्राप्त होते है, इसके दृश्य भ्रमण-दिवस सर्ग मे देखने को मिलते हैं।

इस सृष्टि में काम के प्रवाह को रोकने में मानव प्रायः असफल रहा है। नवीन मनोविज्ञान ने भी काम को मूल प्रवृत्तियों मे सर्वो-

परि स्थान दिया है। उसकी धारा को रोका नही जा सकता, बल्कि उसका मार्गान्तरीकरण किया जा सकता है। भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि धर्मानुकूल काम-स्वरूप भी मैं ही हूँ—

"धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि भरतर्षभ"

यह घर्म की अविरुद्धता या अनुकूलता पवित्र प्रेम से अलग होकर नही चलती। काम को विशुद्ध प्रेम का रूप देना है। काम के पंक से विशुद्ध प्रेम के पकज को प्राप्त करना है। नल-दमयन्ती की जीवन-यात्रा काम की ही भूमिका से प्रारम्भ होती है, परन्तु उसमें व्यावहारिक धर्म-पथों की अवहेलना कही नही की गयी है। मांसल सौन्दर्य की दृष्टि प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर उन्मुख हो जाती है। काम-भोगो को पूर्णतया भोगने के पश्चात् नल-दमयन्ती दोनों को यह बात अनुभूत हुई कि भौगिक सुखो में न स्थायित्व है और न शान्ति। प्राकृतिक सौन्दर्य के झरोखे से जो शान्त रस की किरणें हृदय तक आ पाती है, उनसे वह अपने परमानन्द-स्वरूप की मूक पुकार सुन पाता है। बन्धन वहाँ स्वयमेव ढीले पडने लगते है। प्राकृतिक सौन्दर्यानुराग की स्थिति प्राप्त करने पर दोनों को पारमार्थिक सत्सग प्राप्त होता है, जिसे पाकर वे कृतार्थ हो उठते है। सत्सग से ही पारमार्थिक विवेक की प्राप्ति होती है और वह सत्संग भी भगवत्कृपा के अभाव में नही मिलता।

"विनु सत्संग विवेक न होई, राम कृपा विनु सुलभ न सोई ।।"
[तुलसी दास]

नामकरण :—इस काव्य-ग्रन्थ का नाम 'हंस-कलाधर' रखा गया है। विज्ञ पाठकों को यह सन्देह हो सकता है कि जब इसमें नल-दमयन्ती का चरित्र-चित्रण है तो नाम 'हंस कलाधर' क्यों रख दिया गया। हंस इसमें एक ऐसा पात्र है जिसकी कला (युक्ति) से नल-दमयन्ती के हृदयों में पला हुआ पूर्वानुराग तो सफलता के लक्ष्य तक पहुँचता ही है, समय आने पर उसी के सदुपदेशों से परमार्थ-सिद्धि का भी पथ ज्ञात हो जाता है। जो श्रद्धालु दम्पति हंस की कला (युक्ति) से लोक-परलोक दोनो का सफल पथिक

हो सका, उसका अर्थ-बोधक शब्द यदि 'हंस-कलाधर' हो सके तो इस अकिंचन की भोली समझ से अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'हंस' शब्द का दूसरा अर्थ होता है नीर-क्षीर-विवेकी (सदसद् विवेकी) परम तत्त्व का ज्ञाता पुरुष। नल-दमयन्ती दोनों ही अन्त मे वासना-जगत के ऊपर उठकर उस ज्ञान-विभा के लक्ष्यार्थी हो जाते हैं, जिसे 'हंस-पद' कहते है। दोनों ही परम पुरुषार्थ-पथ के पथिक हो जाते हैं, इस प्रकार भी यह 'हस-कलाधर' शब्द नल या उस दम्पति का अर्थ-बोधक हो सकता है।

हिन्दी-शब्दकोषानुसार हस का अर्थ दिव्य गुण-सम्पन्न राजा भी होता है। दिव्य गुण-सम्पन्न राजा की कला जिसमें हो वह 'हंस-कलाधर' कहा जा सकता है। नल दिव्य भूपोचित गुणो से सम्पन्न था भी, इस अर्थ-भाव को लेकर 'हंस-कलाधर' शब्द राजा नल का सकेतक हो सकता है। इस शब्द से और भी अर्थ निकलते है जो मुख्यार्थ-संकेतक भले ही न हो, पर वे अवान्तर भावो के सकेतक तो अवश्य हो जाते है। जैसे 'हस' शब्द का अर्थ सूर्य भी होता है और उसके साथ लगा हुआ दूसरा शब्द 'कलाधर' है, जिसका अर्थ चन्द्रमा होता है। सूरज जगत का ज्योति-दाता और चन्द्रमा शीतल आनन्दमयी ज्योति प्रदान करने वाला है। इस प्रकार 'हस-कलाधर' शब्द ज्ञान-प्रकाश और आनन्द-प्रकाश दोनों के अधिष्ठान का एक साथ अर्थ-बोधक हो जाता है। नल के राज्य मे ज्ञान और आनन्द दोनों का भाव दिखाई देता है, इसलिये वह 'हस-कलाधर' के रूप में विराजमान है।

इस प्रकार इस अकिंचन ने 'हंस-कलाधर' शब्द को यहाँ नल या नल-दम्पति के पर्यायरूप में रखने की जो धृष्टता की है, वह मनमानी तो नहीं कही जा सकती। शब्दों के ऊपर समयानुसार अर्थारोपण हो भी जाता है। यदि ऐसा भी लगे तो भी विज्ञ पाठक क्षमा करने की कृपा करेंगे।

कुछ संस्कृत-विद्वानो ने अपने नाम 'शम्भू नारायण' को अशुद्ध कहा और उसे 'शम्भु नारायण' लिखने की सलाह दी। 'शम्भु'

शब्द ब्रह्मा और शिव दोनों का वाचक है। शब्द-रूप के अनुसार 'शम्भू' शब्द द्विवचनान्त है, इसलिये वह (शम्भू ब्रह्मात्रिलोचनौ —अमरकोष) ब्रह्मा और शिव दोनों का ही एक साथ वाचक हो गया। आगे शब्द 'नारायण' भी है। इस प्रकार 'शम्भू नारायण' नाम मे ब्रह्मा शिव और विष्णु तीनो एक साथ आ गये।

प्रस्तुत रचना में नल-दमयन्ती दोनों अनुपम श्री-सम्पन्न तथा यौवन-सुलभ समुचित सौन्दर्ययुक्त दिखाये गये है। लौकिक दृष्टि से दोनों ही सर्वगुण-सम्पन्न है। यौवन के पदार्पण पर दोनों स्वाभाविक रूप से काम के वशीभूत हो जाते है, फिर भी वे धर्म-पथ पर ही चलते हैं। यही तो सामाजिक मानव-धर्म है। यौवनावस्था मनुष्य की एक ऐसी सशक्त और अन्धी अवस्था होती है जिसमें प्राय: मानव-धर्म भूल जाने की आशंका रहती है। विशेषता धर्म-पथ पर चलकर ही भोग भोगने की है। यह काम-भोग इस दम्पति-जीवन में पूर्ण यौवन तथा सौन्दर्य में विलसता हुआ पाया जाता है। धर्मानुकूल होने पर तथा हृदय की सम्पन्नता पाने पर वह काम-वासना जीवन की साधना बन जाती है। जीवन की ढलती अवस्था मे, यौवन-छवि समाप्तप्राय होने पर भी दोनों के आन्तरिक प्रेम में अन्तर नही पड़ता, क्योंकि ऐसी अवस्था में धर्म-पालन की आन्तरिक छवि पूर्ण सहायक होती है। दोनों का ही सौन्दर्यानुराग प्रकृति-श्री-दर्शक होने के कारण अलौकिक पथ पकड़ लेता है। जीवन की कल्याणकारिणी तथा वास्तविक सौन्दर्यमयी झाँकी तो प्रकृति के झरोखे से ही मिलती है।

नल-दमयन्ती दोनों ही नाना सांसारिक वैभवों के बीच विषय-जनित काम-सुख-भोगों को भोग उनकी असारता समझ सके। शारीरिक यौवन और सौन्दर्य दोनो समाप्त होकर इस दम्पति के जीवन में प्रश्न-सूचक चिह्न छोड़ जाते है। विषय-भोगों से शान्ति की समस्या हल नही हो पाती, तब परम शान्ति की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है। इस रचना का 'भ्रमण-दिवस सर्ग' उस परम शान्ति की प्राप्ति के हेतु उचित विराग की पुष्टि करता है। संसार के वैभव-विलास की चमक-दमक भी नश्वरता को ही प्राप्त होती है। विनाशशील वैभव-विलास तथा यौवन-सौन्दर्य से वास्तविक

शान्ति की आशा नहीं की जा सकती। यौवन तथा यौवन-सुलभ मादकता के समाप्त होने पर नल-दमयन्ती दोनों ही बहुत खिन्न पाये जाते हैं। एक दिन प्रातःकाल दोनों उपवन में पहुँचते हैं और उसके बाहरी पतझड़ में अपने जीवन-पतझड़ का राग मिलाने लगते हैं। ऐसे ही समय में हंसों का दल वहाँ उतर पड़ता है। हंस-समाज-सहित अपने पूर्वगुरू का दर्शन पाकर वह राज-दम्पति निहाल हो उठता है। समयोचित स्वागत के उपरान्त वहाँ एक सुन्दर सत्संग-सभा का समायोजन हो जाता है। राजा नल सद्गुरु हंसराज से शान्ति का मार्ग पूछता है। हंसराज की समझ में यह बात आ गयी कि नल-दमयन्ती दोनों पूर्णरूपेण सांसारिक वैभव-विलास-जनित सुखों को भोग कर उनकी असारता समझ चुके हैं। अब उन्हें शान्त्यर्थ परम ज्ञान की आवश्यकता है। सद्गुरु हंसराज जो जिज्ञासु दम्पति की शंकाओं का पूर्णरूपेण समाधान करते है। यही हंसोपदेश पाँच कलाओं में विभक्त 'हंस-प्रदीप' नामक अन्तिम सर्ग है। इस प्रकार सद्गुरु के उपदेशों से परितृप्त उस दम्पति ने जीवन की वास्तविक शान्ति का मार्ग समझ लिया। शान्ति-पथ-प्रदर्शन ही इस रचना का अन्तिम लक्ष्य भी है।

काव्यगत गुणों मे मौलिकता एक महान् और प्रशंसनीय गुण है। इस बात पर भी ध्यान इस काव्यग्रन्थ में दिया गया है। पाठक स्वयं पढ़कर आदि से अन्त तक इसकी मौलिकता की परख कर सकते हैं। प्रथम दोनों सर्गों में ही नहीं बल्कि सर्वत्र मौलिकता की झलक मिलती है। कथानक के घटकों में भी अपने ढंग की मौलिकता है। स्वयंवर-साज सर्ग में अपने ढंग की अलग सजावट है। नल से दमयन्ती का मिलन राज-महल में नहीं बल्कि राज-नियंत्रित उपवन में होता है। देवताओं की युक्ति से नल उस उपवन में पहुँच जाता है जहाँ दमयन्ती नित्य नियमानुसार टहलने जाया करती है। स्वयंवर और विवाह के सौन्दर्य-चित्र अपने ढंग के हैं, परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार ही है। तत्पश्चात् प्रेम-पूर्ण प्रथम मिलन तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रणों का मूल्यांकन पाठक स्वय पढ़कर कर सकते है। 'भ्रमण-दिवस सर्ग' के अन्यान्य भाव-दर्शक चित्रणों के साथ 'विगत नगर' के ध्वंसावशेषों का

चित्रण अपनी मौलिक कल्पना के साथ और ही ढंग का है। यहाँ का करुणाजनक दृश्य परम शान्ति-पथ की जिज्ञासा का आधार बन जाता है। पंचकलात्मक 'हंस-प्रदीप सर्ग' तो जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति के सकेतार्थ ही है। जीवन-साधना की दार्शनिक भूमिका पर किस कोटि की बातें सामने रखी गयी है, उसे पारखी जीवन-साधक तथा विज्ञ पाठक ही समझ सकते है।

श्रद्धालु पाठकों से निवेदन है कि वे इस रचना को श्रद्धा के साथ पढ़कर लाभान्वित हों और छोटी-मोटी भूलो के लिये इस दास को क्षमा करें। कवि-स्वभाव की तुलना लोग कपि-स्वभाव सें करते हैं। जैसे रसयुक्त फल के लिये कपि डाली तोड़ डालते हैं वैसे ही कवि भी काव्य-रस के लिये शब्दों को तो तोडते ही है, साथ ही साथ आवश्यकता पड़ने पर व्याकरण का तना भी झकझोर डालते है। फिर भी साहित्य के गौरव पर ध्यान दिया गया है। रचना में गुणों की महानता के लिये इस अकिंचन को कोई श्रेय नहीं है, क्योंकि कवि के भाव-विचार तो प्रायः परमात्म-प्रेरित ही होते हैं। इस प्रकार यह दास तो निमित्तमात्र हो सकता है। पढ़कर काव्य-रस का पाथेय लेकर जीवन-साधना के पथ पर चलनें वाले सहृदय पाठकों को शत-शत वार वन्दन !

जन्म-भूमि तथा स्थायी पता—
ग्राम–भदिवाँ (अमौली)
पत्रालय–अम्बा, परगना–जाल्हूपुर
जनपद–वाराणसी

आपका—
शम्भू नारायण सिह 'अकिंचन'

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

मंगलाचरण— १—२
१—परिचय सर्ग···· ···· ३—२४
२—स्वप्न सर्ग···· ···· २५—३६
३—उपवन सर्ग···· ···· ३७—६४
४—हंम-गमन सर्ग ··· ···· ६५—८६
५—दमयन्ती-हंस-संवाद सर्ग ··· ···· ८७—११०
६—नल-चिन्तन सर्ग ··· ···· १११—१२२
७—दमयन्ती-चिन्तन सर्ग १२३—१३६
८—स्वयंवर-साज सर्ग ··· ···· १३७—१८२
९—स्वयंवर-सर्ग ··· ···· १८३—२३२
१०—शान्ति-विलास सर्ग···· ···· २३३—२५६
११—निसर्ग-दर्शन सर्ग [सान्ध्य विहार]···· ···· २५७—२७६
१२—निसर्ग-दर्शन सर्ग [प्रातः विहार] ··· ···· २७७—३०२
१३—भ्रमण-दिवस सर्ग···· ···· ३०३—३५०
१४—हंस-प्रदीप [प्रथम कला] ··· ···· ३५१—३७६
हंस-प्रदीप [द्वितीय कला] ·· ···· ३७७—४०२
हंस-प्रदीप [तृतीय कला] ··· ···· ४०३—४२८
हंस-प्रदीप [चतुर्थ कला]···· ···· ४२९—४५६
हंस-प्रदीप [पंचम कला]···· ···· ४५७—४८३

शम्भूनारायण सिंह 'अकिंचन'

श्री राम

मंगलाचरण

●

प्रभुवर ! मेरी शुभ आशा में—
तेरी करुणा का बल होये।
तव भावपूर्ण जग-लीला में—
जीवन का गान सफल होये ॥१॥

द्वयता की सुन्दर लीला में—
मुस्कान एक तव जान सकूँ।
हर गति-विधि में तेरे नर्त्तन—
के हाव-भाव पहचान सकूँ ॥२॥

भय-राग-द्वेष का भ्रामक पट
अन्तर से सहज हटा पाऊँ।
मन का आरोपित स्वार्थ त्याग
छवि के शुभ दर्शन पा जाऊँ ॥३॥

जग-रूप मधुरिमा के स्वर का
केवल दर्शन में अपना हो।
झाँकी की उस विभोरता में—
मिल सके भाव-रस जितना हो ॥४॥

तेरी ही छवि से सजी-बजी
तव प्रकृति सदा दिखलायी दे।
सुन्दर लीला में भावों की—
वंशी-ध्वनि सदा सुनायी दे ॥५॥

तेरे ही स्वर की धारा में—
कविता के सुन्दर राग चलें
तेरी करुणा की चितवन से—
मानस में सुन्दर भाव पलें ॥६॥

हर पद-गति में गुरु चरणों तक—
चलने का सुन्दर ध्यान बने,
भोली पुकार जीवन-पथ से—
कविता के स्वर में गान बने ॥७॥

जीवन-मंजिल में चलकर नित—
तुझको ही जीना जान सकूँ
भावों की उस अनन्य मति से—
शुचि प्रेम-राह पहचान सकूँ ॥८॥

तेरे विलास का जग-नर्त्तन—
हर रूप-भाव में मधुमय हो,
कवि-कर्म-रूप के वन्दन में—
स्वीकार सदा मेरा नय हो ॥९॥

परिचय-सर्ग

स्वामी की चाह जान मन में—
श्री आ पहुँची ज्यों निषध-देश।
सुख-शान्ति-साधनों में प्रवेश—
पाकर बैठी ज्यों विविध वेश॥१॥

स्थायी वास न पाया तो—
आकर वसन्त उस देश बसा।
नल का शरीर ही केन्द्र मान
मादक यौवन के वेश लसा॥२॥

ऊषा की बोधक चितवन-संग
चलती थी कर्ममयी लीला,
तोषद विश्राम, प्रेम का पथ
नित दिखलाती सन्ध्या-वेला॥३॥

शृंगार सजाकर रजनी नित—
आती यौवन सम्भार लिये।
रत्नों की माया यहीं लुटा
जाती अम्बर को प्यार लिये॥४॥

शशि कला न अपनी दे पाता
तब भी रजनी आ निषध-देश,
मणि-दीपों की मृदु जगमग में—
पा जाती थी प्रिय कलित वेश॥५॥

रजनी का घन लज्जित होता
प्यारी चपला को गोद लिये।
कल-भाषण ले आते प्रकाश
जब वातायान से मोद लिये ॥६॥

दुख की माया को दूर-देश
तजकर आती नित अँधियारी।
वह प्रेम-मिलन की वेला में—
दिखलाती सुन्दरता सारी ॥७॥

तम से प्रकाश की शोभा का—
होता निशि में शृंगार सफल।
जीवन-रस से सुन्दरता का—
हो पाता था अभिसार सँभल ॥८॥

मधुमास-रचित रस-माया में—
अलि-साज रँगीले अम्बर का।
मृदु हास-भरे वन-वैभव में—
अभिसार सहज 'गुन-गुन' स्वर का ॥९॥

मधु की माया छिपकर आती
रस भर देती जीवन-वन में।
नव रंग-भरी हरियाली का—
अब भाव सोचता नल मन में ॥१०॥

दुख-मोह भरे जीवन-पथ में—
सुख-शान्ति-रूप वह सुखद राज।
सुख-विलसित जीवन गिर न सके

स्वर्गिक मेला तजकर परियाँ—
घन-बीच छिपी-सी बसती थीं
नल का सौन्दर्य परखने को—
चपला के रूप बिलसती थी ॥१२॥

तन-मादकता की लहरों में—
पड़कर सत्वर छिप जाती थी
सौन्दर्यमयी लज्जावाली
क्षण भर ही नयन मिलाती थी ॥१३॥

किसके जीवन की गन्ध लिये
आता समीर मतवाला बन,
अवगाहन करने को जीभर
किसके जीवन की धारा बन ? ॥१४॥

यौवन की मादक डाली पर—
भावों के पक्षी आते थे।
नव सरस पहेली का केवल—
संकेत मात्र दे जाते थे ॥१५॥

संयम में यौवन की शोभा
शृंगार सहज रच पाती थी;
पर मुधा बनावट की माया—
अति दूर सहम रह जाती थी ॥१६॥

नैसर्गिक औ नर-रचित दिव्य
सुन्दरता का मृदु मेल जहाँ,
नल वहाँ पहुँचने वाला अब
अन्तर-संगम-रस-खेल जहाँ ॥१७॥

सुन्दरता की मादक रेखा—
जिस क्षितिज-लोक से आती थी,
ऊषा निज मृदु मुस्कान दिखा
संकेत सदा दे जाती थी ॥१८॥

श्यामल अम्बर में वह लाली
प्राची की प्रभा दिखाती थी।
सरसिज-विकास का समय सहज
मानस को अब समझाती थी ॥१९॥

पिंगल किरणों पर चढ़कर ज्यों
सुन्दरता आती निषध-देश,
प्राची-नयनों के मन भाये
इसलिये सजाती विविध वेश ॥२०॥

भर प्यार रँगीली बाँहों से—
किरणें आलिंगन करती थीं।
सुन्दरता के पट पर चित्रित
नगरी ज्यों नित्य विलसती थी ॥२१॥

नृप-लक्ष्य-हेतु गठबन्धन की—
जब बात कहीं कुछ हो पाती,
कोयल की मंगल-ध्वनि आकर
शुचि सहजसमर्थन कर जाती ॥२२॥

जीवन-यौवन सुन्दरता की—
मृदु मौन कहानी कह जाता।
लज्जा की मोहक छाया में—
बैठा नल तन्मय सुन पाता ॥२३॥

अब पिता वानप्रस्थी नरवर
करता स्वरूप का ध्यान रहा,
भूपासन पर शोभित नल का
समुचित करता सम्मान रहा ॥२४॥

आशाभर निपुण योग्य सुत का—
सब भाँति परीक्षण कर देखा।
शासन में शान्ति - सुरक्षा का—
मिल पाता था समुचित लेखा ॥२५॥

अब वीरसेन मन सोच रहा
आयेगी पुत्र - बधू कोई,
पर चयन न भ्रामक हो जाये
चिन्ता - रेखा उर बनी नई ॥२६॥

तन - मन की वह सुन्दर बाला
है कौन, रखे जो मुख-लाली,
सुत के भावों की आशा में—
विश्वास सहज भरने वाली ॥२७॥

नारी - गुण से सम्पन्न सदा
लज्जाशीला गुणवती मिले,
पति - सेवा - रता, सहज सरला
सुधि नित्य निरन्तर पति की ले ॥२८॥

मन का सब कुछ पति-चरणों पर—
रख कर सब कुछ पाने वाली।
उसको प्रिय परम समझ पाये
श्यामा, मन को भाने वाली ॥२९॥

मन के भावों की तन - शोभा—
बनकर शुभ सहज विकस पाये।
शोभा को भी शोभित कर दे
सुत के अन्तर में बस जाये ॥३०॥

अञ्चल में माता के गुण हों,
आखों में हो शृंगार सरल,
कर में सेवा शुचि बसती हो,
उर में आकर्षक भाव सफल ॥३१॥

भावों की गंगा - धारा में—
जीवन का लक्ष्य समझती हो।
उस प्रेम-सिन्धु की दूरी क्या,
पाने की चाह उमड़ती हो ॥३२॥

क्षणभंगुर काया का विलास,
बस लहरों का उठना - गिरना,
उर्मिल क्रीड़ा में प्रेम सत्य
जाने उसमें प्रिय का मिलना ॥३३॥

तन - भोग मात्र ही लक्ष्य नहीं
वह पथ हो योग - साधना का।
शुचि सहज समर्पण - सेवा में—
मिट चले विकार वासना का ॥३४॥

उसकी अपनी इच्छा फिर क्या
जो भी होगी प्रिय-भाव-सनी।
सुत के जीवन में रस भर दे
होगी वह पुत्र-वधू अपनी ॥३५॥

संग्रह की कटुक वंचना वह
अन्तर से सदा जान पाये,
इसलिये त्याग - पथ पर चलकर
निर्भार हुई प्रिय को भाये ।।३६।।

इस भाँति सोच - रत वीरसेन,
बैठा नल भी था वहीं बीच
तब तक कुछ अतिथि पहुँच आये
ज्यों भाव लिये हों रूप खीच ।।३७।।

जन रहे विदर्भ - भूमि - वासी
आ पहुँचे देश - भ्रमण करते ।
क्या रही देश की सुन्दरता,
नैसर्गिक भाव हृदय धरते ।।३८।।

वन्दन औ नमन - भरी मुद्रा
उनमें आकर साकार हुई ।
शुभ सरस कहानी कहने को
जैसे पावन आधार हुई ।।३९।।

देखी नल की सुन्दरता तब
जो भावों में आ बसती थी ।
यौवन के भार दबी - सी कुछ
लज्जा की राह विलसती थी ।।४०।।

तन-श्री औ स्वागत-विधि लखकर
अपनी तन - सुधि जन गये भूल ।
पथ-श्रम की दिव्य सफलता - हित
विकसित भावों के हुए फूल ।।४१।।

पूछा तब वीरसेन ने फिर
"हे अतिथि-जनो, क्या समाचार ?
किस भाँति भ्रमण करते पहुँचे
बीहड़ पथ कैसे हुए पार ॥४२॥

"नैसर्गिक सुषमा भरी हुई
पावन भू-श्री को आँक सकें,
नटवर के चल जग-नर्त्तन में—
उसकी छवि पर कुछ झाँक सकें ॥४३॥

इसलिये भ्रमण करते पहुँचे।
शोभा-संपूरित निषध-देश।
है जहाँ प्रकृति सब भाँति सजी
अपना वैभव लेकर अशेष ॥४४॥

देखा दक्षिण से उत्तर तक—
यह प्यारा देश विलसता-सा।
आकर्षण के कर सजा हुआ
अम्बर के उर में बसता-सा ॥४५॥

पूरब में आर्यावर्त देश—
अपनी उपमा में एक रहा।
हिमगिरि से श्री-वैभव पाकर
उसके पद मस्तक टेक रहा ॥४६॥

ऊषा की छवि अरुणाभ, अहा !
पहले जिसका वन्दन करती।
मलयानिल की गंधित वेला
प्राणों में नव जीवन भरती ॥४७॥

नाना देशों के पक्षी भी—
नभ से इसकी झाँकी पाते।
रस-भावों से भावित होकर
उड़ बार-बार आते-जाते ॥४८॥

गंगा-यमुना की गोदी का—
देखा हमने वह धन्य देश।
षट ऋतु-रंजित परिधान पहन
है प्रकृति बदलती जहाँ वेश ॥४९॥

धन-धान्य-सजी उस धरती पर
हरियाली सहज उमड़ती-सी।
मधुमास-रचित सुमनावलि पर
श्यामा मोहक स्वर भरती-सी ॥५०॥

नगराज हिमालय से निकली
प्यारी नदियों का सरस देश।
झाँकी आकर झाँकी लेती
सुन्दरता पाती सहज वेश ॥५१॥

नभ के घन दूर-देश से आ
पाते केकी का प्यार जहाँ
चपला मुस्काती लुक-छिपकर
करती मोहक अभिसार जहाँ ॥५२॥

मधुमास जहाँ निज वैभव में—
शृंगार-स्वरूप निरख पाता,
बेसुध अपनी मादकता से—
जीवन में मधुरस बरसाता ॥५३॥

जीवन पाने का क्या रस है,
यह आर्यावर्त बता देता।
श्रृंगार सुलभ निज जगमग में—
प्रिय प्रकृत प्रेम - पथ दर्शाता" ॥५४॥

यों देश - देश की मृदु बातें
आयीं प्रसंग में नई - नई।
फिर देश - देश की सुन्दरियों—
की चर्चा भी रसमयी हुई ॥५५॥

फिर वीरसेन का प्रश्न हुआ
"प्रिय अतिथि, सुदेश-भ्रमणकारी !
नल के है योग्य कौन बाला
गुण - सुन्दरता में जो न्यारी" ॥५६॥

सुनकर पथिकों ने फिर देखा
नल का सौन्दर्य निराला - सा।
मुस्करा उठा नल सुन प्रसंग
उर मोहक भाव गये सरसा ॥५७॥

था प्रश्न उचित समयानुकूल
पथिकों के भाव सँभल जागे।
देखा दमयन्ती को भी था
नल को बैठा देखा आगे ॥५८॥

दमयन्ती का कल्पित स्वरुप—
बैठाया नल के वाम - भाग
रस की आँखों से भाव - मग्न
देखा मन का विरचित सुहाग ॥५९॥

आनन्द उमड़कर आँखों से—
घन अश्रुरूप बन घिर आया।
मधुरसता की चपला - श्री से
मुस्कान - रूप मृदु दर्शाया ॥६०॥

फिर बोल उठे जन अतिथि सँभल
"यह प्रश्न समय का जान पड़ा,
भावी आकर्षण से पूरित
अपने में रखता मान बड़ा ॥६१॥

थल - थल की भूमि कहाँ कैसी
किस सुन्दरता से सनी हुई,
हम भ्रमणशील जन देख चुके
मन रूप - धारणा बनी हुई ॥६२॥

पर्वत श्रीशैल देश दक्षिण
कालेश्वर का श्रृंगार जहाँ,
दर्शन से पथ मंगलमय कर
चल पड़े वहीं से जहाँ - तहाँ ॥६३॥

उस दिव्य भूमि की वट - छाया
कालेश्वर जी के शुभ थल में,
बैठे देखा, वह दृश्य धन्य
अब तक चित्रित जो स्मृति-तल में ॥६४॥

छवि-रत्नों में वह महारत्न
युवती - स्वरूप में ज्यों आया।
परिचय उसका जो जान सका
स्मृति - पट पर अब तक छाया ॥६५॥

दक्षिण - देशों में रम्य देश
सब भाँति विदर्भ विलसता-सा
दिनमणि जिसमें मधु-श्री भरता
शशि सस्मित जिसे निरखता-सा ॥६६॥

मधुमय वसन्त निज वैभव में—
खग - मृग - विहार-लीला रचता।
यौवन-विकास धर रूप जहाँ
जीवन-रस-भाव सफल करता ॥६७॥

हरियाली अपने वैभव में—
रचती गोदी की मृदुमाया।
बहुरंगी सुमनों की शिशुता—
पाती जिसमें शीतल छाया ॥६८॥

हर ओर शान्ति का सहज भाव
जिसके सुराज मे फलित हुआ,
उस भीमराज का राज धन्य
जिसमें कुभाव भी ललित हुआ ॥६९॥

उसकी कन्या वह दमयन्ती
अति रूपवती कुल की लाली।
माँ की जिस गोदी में आयी
मंजरी प्रियंगु नाम वाली ॥७०॥

सुनते थे कानों से पहले
उस भीम-सुता की श्री-कलता,
जैसे वसन्त की रचना में—
सुमनों से विलसित स्वर्णलता ॥७१॥

सखियों-सँग आयी दमयन्ती
तन-श्री में मृदुता भरती - सी
यौवन - विकास - रेखाओं में—
सुन्दरता लहरित चलती - सी ॥७२॥

शोभा की किरणें निकल रहीं
वसनों की ओट सुभग तन से,
शशिजा सुहासिनी का सुहास
जैसे कलिताभ विरल घन से ॥७३॥

काया - कसमसी कञ्चुकी से—
मिल खेल रही तन - मादकता।
यौवन - सुढार आकर्षण में—
रस - राग - भरी - सी पावनता ॥७४॥

उर भावमयी मृदुता विहँसित
आँखों में रूप बनाती थी।
उन्मीलन में जैसे लुक - छिप
निज मोहक रूप दिखाती थी ॥७५॥

अधरों में लाली थी जैसे
पाटल - कलिका कुछ हिलती हो,
मृदु मधुर मधुप - गुंजार - भरी
रवि प्रात-छटा में खिलती हो ॥७६॥

शृंगार-भरी शोभा तन की—
भर देती भाव रम्यता का;
पर चाल-ढाल से टपक रहा
शुभ लक्षण पूर्ण सभ्यता का ॥७७॥

तन - सजी आलियों - बीच सहज
मन्थर गति में वह न्यारी थी।
सुमनों से भावित लहरों-सँग
ज्यों तिरती दिव्य मराली थी ॥७८॥

पग - चालन में मधुमास रमित
मतवाली गति में स्वर भरता।
रुनझुन नूपुर के भावों से—
दोलित दुकूल में वल खाता ॥७९॥

शशिरूप सुघर आनन विहँसित
उसमें आभा सुख - सारमयी,
जिससे घन - केश - राशि भावित
चातक - स्वभाव को प्यारमयी ॥८०॥

कल-भाषण में दशनों की छवि—
मुस्कान लिये यों बन पायी,
चपला - पथ पाँति रजत-परियाँ
नर्त्तनपर अधर उतर आयी ॥८१॥

अधरों के मोहक दोलन में—
सुन्दर भाषण की कला रही।
शोभा-सर की युग लहरें ज्यों
प्रिय प्रेम-पुलिन पर बुला रहीं ॥८२॥

सुन्दरता की परिभाषा भी—
आकर ढिग स्वयं लजा जाती,
फिर काम-चित्र की भाषा में—

अँग - चालन के उस आकर्षण—
से मानस लहरित हो जाता।
विहँसित शशि-मुख की कला देख
सागर की भाँति उफन पड़ता ॥८४॥

सब भाँति सुघर यौवन-विकास—
में मोहकता नव पायी हो,
आकर्षण का ज्यों सार खींच
धर रूप महा छवि आयी हो ॥८५॥

सुन्दरता में पावनता की—
मिलकर धारा उर वहती थी
शुचि शालीनता सहज भासित—
हो वाह्य प्रदर्शन करती थी ॥८६॥

कटुता - काई का नाम नहीं
जीवन - धारा में जान पडा।
वह अमी - धार - सरिता - सी थी
प्रिय - सागर था अनजान पड़ा ॥८७॥

सौन्दर्य - कल्पना जा समीप
मन - चकित प्रशिक्षण लेती थी,
अँग - अँग पर हो जाती विभोर
अर्जित थाती भी खोती थी ॥८८॥

वह सत्यरूप संकल्पों की
शिवता में ज्यों साकार हुई,
सुन्दरता के आश्रय वाली
मानवता को आधार हुई ॥८९॥

मानस के भाव - सुजीवन से—
नव प्रात खिली - सी लगी भली
सरसाती किरणों की पाली
मधुभरी मधुप से रहित कली ॥६०॥

सुन्दरता प्रेम - कहानी निज
कहती गोदी मे यौवन की।
वैसे ही भोली दमयन्ती
कहने वाली किससे मन की ? ॥६१॥

रंजित घन-इन्द्र-धनुष में ज्यों—
उसके तन की छाया पड़ती।
वैसी मुस्कान न चपला की;
इसलिये चमक क्षण छिप रहती ॥६२॥

उस छवि की छिपती छाया ज्यों—
नर्त्तित मयूर घन मे लखता,
उसकी बोली सुधि में लाकर
डाली से छिपकर स्वर भरता ॥६३॥

क्षण समझ न पाया उस पथ को
जिससे उसका यौवन आया।
उर भाव - भरी सुन्दरता का—
कैसे वह रूप निखर पाया ? ॥६४॥

ऐसा लगता ज्यों केन्द्र वही
सुन्दरता मृदु मोहकता की
यौवन - मंजिल पर पहुँची वह

तन की शोभा हो निज मन की
मन - मृदुता मनसिज माया की।
कर सके समर्पण प्रिय - पद पर
उसकी फिर अकथनीय झाँकी ॥९६।

ऐसी बाला वह भाव - भरी
मुझको ऐसा आभास हुआ।
उसकी सुन दिव्य कहानी तब
परिजन से दृढ़ विश्वास हुआ" ॥९७॥

वाणी की रेखा मोहमयी
रूपित नल - उर पर सुन्दरतम।
भीतर शृंगार - भाव विकसित
पर बाह्य रूप से गया सहम ॥९८॥

अन्तर-पट पर कल चित्रण की—
मृदुता धर रूप निखर आयी,
मोहक विकास वय-भावों से—
चलकर अधरों पर मुस्कायी ॥९९॥

देखी उसने उर - ध्यान - बीच
भीतर जगमग शृंगारमयी,
उस एक रूप पर छवि - रेखा
आती लगती बन नयी - नयी ॥१००॥

अन्तर - छवि की मुस्कान देख
नरता कोमल सुधि गयी भूल।
पहुँची लेकर कल्पित रेखा

वाणी का ही वह चित्रण था
पर वाणी मौन हुई नल की।
सौन्दर्य - कल्पना उर अभिसृत
लज्जा के पथ कुछ आ झलकी ॥१०२॥

नरवर भूपाल पिता के भी—
मन में कौतूहल पथ बदला।
सोचा, कैसे सुत के समीप
देखूँ ऐसी सौन्दर्य - कला ॥१०३॥

फिर सोचा मन, जीवन - विधान
अपने में स्वयं निराला - सा।
नर समझ न पाता अवसर पर
पड़ जाता कौन कहाँ पाँसा ? ॥१०४॥

तब पथिक जनों को साथ लिया
वह पहुँचा निज सत्संग - धाम,
परमार्थ - कथन जिसमें होता
लखने को निज में स्वयं राम ॥१०५॥

स्वागत - विधान भी वही बना
निशि - बेला उनको रहने का।
मन मे सत्संग - भाव आया
कुछ कहने का कुछ सुनने का ॥१०६॥

जीवन - विचार ही जीवन का—
आधार स्वय बतला देता
संतत प्रयास से चल - फिर कर

बोले जन, "नरवर ! जीवन में—
अपना जो भाव समझ पाये
उसको अभाव असफलता फिर
जीवन - पथ में क्योंकर आये ? ॥१०८॥

मुदग्राही को जग मोद - भरा
इस लीला में परिवर्त्तन की
यह भेद सहज जो लख पाता
उसको जग - चित्रपटी मन की ॥१०९॥

जीवन की चपल तरंगों से—
प्रकटित रूपों के विविध लास,
मन पर अदृष्ट की छाया से
लगता मोहक, कटु, मधुर रास ॥११०॥

बाहर की चलती लीला मे—
जीवन का राग प्रकट अपना।
अपने में भावित हो पाया,
उसका अपना संसार बना ॥१११॥

कुछ बनकर स्वयं अहंता से—
लीला का रूप कही धरता,
छवि की झाँकी न उसे मिलती
उसको न स्वरूप सहज मिलता ॥११२॥

जब राग - द्वेष के ऐनक को—
आँखों से सहज उतार सके,
पग - पग निसर्ग की लीला में—

नटवर का कोई प्रेम-रूप
अन्तर में आकर बसता हो,
उसका अपना प्रिय पथ होगा
यदि भावों - भरी सरसता हो ॥११४॥

संचित जीवन का निज सब कुछ
प्रिय - चरणों पर धर दे झुक कर
कुछ शेष बचा अपना न करे
प्रिय उसका निज होता सत्वर ॥११५॥

लीला उससे भावित होकर
आँखों के सम्मुख आ जाती,
अन्तर - विभोरता के पथ पर
रस - रूप सहज दिखला देती" ॥११६॥

यों सुजनों से रुक वीरसेन—
की बात समय कुछ चल पायी
तब तक सुरंग की झोली से—
रोली बिखेर सन्ध्या आयी ॥११७॥

खग नीड़ - ओर मुहँ कर उड़ते
मृग हार छोड़ पथ पर भाये
भोले किसान तज ताल - छोर
संगीत भरे गृह - पथ आये ॥११८॥

ध्वनि से हुलास दे उपवन को
श्यामा छिपती-सी क्लांत हुई।
मादक ध्वनि मिल तरु-शिखरों से—

रुनझुन नूपुर के गीतों से—
कंगन के सुन्दर ताल मिला—
पनघट उदास कर गागर ले
प्रमदा-दल भी घर-ओर चला ॥१२०॥

सुमनों को निज गोदी में ले
हरियाली मिली ललाई से
रवि - वन्दन में वह भूली-सी
सन्ध्या की करुण विदाई से ॥१२१॥

खपरैलों से अब धूम उठे
मन्थर गति से अम्बर धरते,
होते जाते थे शून्य - लीन
जग - नश्वरता इंगित करते ॥१२२॥

तम का लखकर आगमन दीप—
भोले प्रकाश अब साध रहे
सुन्दरियों के कर दीपित हो
सौन्दर्य निरख निर्बाध रहे ॥१२३॥

घण्टों की ध्वनि टकरा बढती
पादप - शिखाग्र से क्षितिज-छोर ।
खग - सभा विसर्जित शिखरों से
तज सान्ध्यगीत का मधुर रोर ॥१२४॥

गलबाही डाले निशिपति भी
निशि रास-हेतु अब निरख रहा
होने वाली नभ की लीला
तारक-दल भी ज्यों परख रहा ॥१२५॥

सन्ध्या-वन्दन अवसर पर कर
जन वीरसेन के साथ लगे।
भोजन-विश्राम समय पर कर
प्रातः मुदिता के साथ जगे ॥१२६॥

प्राची प्रातः के साज सजी
छवि-रीति नवल भर मुदित लसी
ऊषा की भर मुस्कान मृदुल
जागृत जन-भावों में सरसी ॥१२७॥

व्यवहार निभा मिल भाव–सहित
भोले जन अपनी राह चले।
भावों की छाप छोड़ मन पर
वे पथिक गये पा भाव भले ॥१२८॥

—o—

स्वप्न - सर्ग

रजनी में नृप नल ने देखा
भावों का सुन्दर सपना था
आशा भर एक सुन्दरी का—
श्रृंगार वहाँ पर अपना था ॥१॥

मणि - दीप - सजे शोभा-गृह में—
वह परम सुन्दरी चलती - सी ।
क्षण - क्षण नवीनता के पथ से
आकर नयनों में ढलती - सी ॥२॥

नव विकसित तन सब अंग सुघर
परिधान रंग हल्का धानी ।
कोमल प्रकाश के झिलमिल में—
वह वर्ण गुलाबी का पानी ॥३॥

लगते मृदु वसन खींचते - से—
नव भरे अंग निज ओर सिहर
नीलम-रँग कलित कंचुकी मे—
यौवन की कलियाँ खिली उभर ॥४॥

धुँधली - सी रेखा अन्तर की—
नयनो के ऊपर जान पड़ी
मानस मे भ्रमर - लकीरो - सी

अधरों के पथ से झाँक रही
मृदु-मधुर कपोलों की लाली
आशा में भर ज्यों खोज रही—
मादक प्रिय चुम्बन की प्याली ॥६॥

मुख मण्डल श्याम केश-नीचे
मृदु हास लिये यों बन पाया,
अम्बर घन-नीचे सस्मित ज्यों
राकेश गुलाबी हो आया ॥७॥

कुछ सकुच नयन, उन्मीलित-से,
दो मधुप त्याग ज्यो चंचलता
शशिगत सरोज मे विलसित हों
बेसुध पीकर मधु-मादकता ॥८॥

अधखुली सजीली बाहों में—
मधुसर की लहरित झलक रही
गति में उमड़ी नव राग लिये
आलिंगन की ज्यों ललक रही ॥९॥

नीचे-ऊपर समुचित विकास—
से तन में लगती क्षीण लंक
प्रिय-बाहु-पाश की नाप समझ
विकसित न हुई ज्यों हो सशंक ॥१०।

लज्जा की भर मुस्कान मधुर
नल के समीप वह खड़ी हुई,
नत-सिर मुख दक्षिण भुजा-ओर
मोहक उलझन में पड़ी हुई ॥११॥

कुछ रुक पीछे वह मुड़ आयी
लेने को सुमनों का दोना,
आले पर जो रख आयी थी
पढ़कर ज्यों मन - मोहक टोना ॥१२॥

देखा नल ने मुड़कर चलते,
वह काम - कला रस की बाला
ज्यों अंग - अंग से छलक रहा
यौवन की मदिरा का प्याला ॥१३॥

उरु-युग लगते थे वसन - बीच
पग - चालन मे मन्थर गति से
दो लहरें काम - सरोवर मे—
करती क्रीड़ा उठ चल रति सें ॥१४॥

नागिन - सी चोटी बल खाती
नव विकसित भरे नितम्बों पर
मधु - भरे कलश युग ढुल न सकें
लेती सँभाल निज अंगो पर ॥१५॥

जघनोरु भरित कल कसमस में—
ज्यों काम लहरियाँ खेल रही,
वक्षस्थल से कटि की लघुता—
लख सहज मिलाती मेल रही ॥१६॥

नव राग - भाव सें दो पग चल
कुछ सोच-समझ कर रुक जाती ।
फिर लाज - भरी आशा लेकर
आगे चलती, कुछ झुक जाती ॥१७॥

पहुँची जब आले के समीप
तब हिचक वहाँ कुछ मन्द हुई
क्षण भर वह व्रीड़ा की क्रीड़ा—
अन्तर-निकुंज में बन्द हुई ॥१८॥

सुमनों का दोना कर लेकर—
फेरी उसने चितवन बाँकी।
होकर निहाल नल ने पायी
सुन्दरता की अनुपम झाँकी ॥१९॥

आती-सी जब वह जान पड़ी
नल के अन्तर का तार हिला,
ज्यों मधुर राग की धारा में—
उर प्रेम-गीत का सार मिला ॥२०॥

धीरे-धीरे बढ आने में—
आकर्षण था मोहक गति का,
ज्यों मूर्त्तिमान मधु से मिलने
आती कोमल पुष्पित लतिका ॥२१॥

लज्जा-सुन्दरता की क्रीड़ा—
चलने फिर लगी वहाँ मिलकर
व्रीड़ा-युत मृदु मुस्कान लिये
वह प्रेम-भाव में रही सिहर ॥२२॥

मोहकता का जादू पढ़ती
ज्यों देव-लोक की परी चली
उसकी भोली नत चितवन से—
ज्यों सिद्धि-लता की कली खिली ॥२३॥

आकर समीप कुछ रुकी वहाँ
कर में शुचि लिये सुमन-माला।
घन - अन्तराल में शशि - समीप
ज्यों खड़ी हुई विद्युत-बाला ॥२४॥

माला शुचि नल के गले डाल
कुछ क्षण नत-मस्तक खड़ी हुई
ज्यों शशि-समीप घन - श्री-बाला
आ प्रेम-सुधा - हित अड़ी हुई ॥२५॥

पहले जैसा सुन पाया था
मृदु मधुर रूप दमयन्ती का,
सचमुच नल ने वैसा देखा
ज्यों काम-रचित तन मस्ती का ॥२६॥

अपनी सुन्दरता भी नल को
सपने मे मोहक लगी आज
अन्तर - गति की सुन्दरता वह
मोहक भावो में रही राज ॥२७॥

अपने भावों की रचना ही
सपने के जग में रही झाँक,
मानव - मन की सुन्दरता को—
जग मे सकता है कौन आँक? ॥२८॥

नव काम - कला से विरचित तन
नल को आभासित था होता।
वह रूप - रूप में अवगाहन
पर स्वप्न - भाव का था गोता ॥२९॥

दमयन्ती का ही मिलन जान
नल - उर में जागी प्रेम-कला।
अभिलाष-राग के संगम पर
आशा का सुन्दर दीप जला ॥३०॥

चरणों पर सुमन चढ़ाने को
नत हुई सहमती - सी बाला।
तब नींद खुली, सब रंग भंग
आशा का लुढक पड़ा प्याला ॥३१॥

"अपने चरणों पर जो आयी
वह सुन्दरता मुड़ गयी किधर ?"
आहत-उर नल क्षण चौंक उठा
लेकर उसास ताका ऊपर ॥३२॥

आया बाहर उसने देखा,
राकेश विहँसता अम्बर में।
कुछ समय देखता रहा उसे
फिर बोल उठा आकुल स्वर में ॥३३॥

"शशि, तारक-सज्जित अम्बर में–
वितरित करते हो रूप-सुधा,
पर मेरी झोली में आया
वह क्षण भर में क्यो हुआ मुधा ? ॥३४॥

नीरव अम्बर के किस पथ से—
वह आयी थी मेरे समीप,
फिर किस पथ से वह गयी कहाँ,
यह मुझे बता दे, गगन - दीप ! ॥३५॥

गहरे अम्बर में आसन तव
तू देख रहा है नभ अनन्त।
वह प्यारी छवि उड़ गयी किधर
रे, मुझे बता दे आदि - अन्त ॥३६॥

जगती का ध्यान न रजनी को
क्या जाने कौन अधीर कहाँ ?
निज सुख - विलास में भूली वह
फिर लख न सकी पर-पीर जहाँ ॥३७॥

शशि ! रजनी पहुँची तव समीप
लेकर निज यौवन का प्याला
अधरालिंगन कर पीने को
जग पर तम का परदा डाला ॥३८।

आशामय अञ्चल नीलाम्बर
तारक - भूषित सब अंग सुभग
माती रजनी के साथ विहंस
बेसुध क्रीड़ा करते हो जग ॥३९॥

माना निशि रूप-गर्विता है
मृदु इन्दीवर - सी गातवती
पर वह तो थी राजीव - रंग
विद्युत - बाला - सी रूपवती ४०॥

इसलिये जलन निशि के मन में
मुझको देती कुछ पता नही।
यदि पूछ पड़ा शशि, उससे तो
क्या बतला देगी धता नहीं ? । ४१।

शशि, तेरी मोहक हँसी आज
इस समय मुझे जँच रही नही
तेरी शोभा की कीर्त्ति बड़ी,
उसमें करुणा बच रही नही।४२॥

जग - अंधकार में भूल गया
यदि नर जीवन की अभय राह
बतलाने में मानवता है
उसके जीवन से कौन दाह ? ॥४३॥

क्या पथ अब मेरे जीवन का,
कुछ बात समझ में आ न रही।
अम्बर अनन्त भी मौन हुआ
आशा कोई पथ पा न रही ॥४४॥

कुछ पक्षी रात्रि - बिहारी अब
करते बिहार है यत्र - तत्र।
उल्लू की कच - कच बुरी लगी
सिर हिला डाटते उन्हें पत्र ॥४५॥

गल-बाँही डाले तरु - समीप
लतिकायें भी अब सुप्त पड़ी
अज्ञात विकसिती कलियाँ भी
तम की माया में गुप्त पड़ी ॥४६॥

कुहरे की चादर डाल प्रकृति
पहरे पर कर उलूक सोयी।
वह धूर्त्त व्यर्थ कुच - कुच करता

निशिचर - पंछी चादर में घुस
मनमानी करते लूट - पाट
सपने की निधि भी ले भागे
मम खुला देख अन्तर - कपाट ॥४८॥

सपने के वे मणिदीप सभय
भागे ज्यों तम के पार हुए
जिनसे सुरूप वह निखर पड़ा
किन नयनों के आधार हुए ? ॥४९॥

हे, विश्व - देव, अन्तर्यामी
तेरी माया चलती जग में
क्यों रूप मोहमय दिखलाया
मैं भूल गया उस जगमग में ॥५०॥

नल शान्त हुआ उर - कसक लिये
भावों की मोहक उलझन से ।
अच्छा न लगा, पाया उदास—
अपने को अपने जीवन से ॥५१॥

अम्बर - वाणी सुन पड़ी उसे,
"रे नल होता क्यों यों उदास ?
पायेगा चाहा रूप - प्रेम
बुझ जायेगी तव हृदय - प्यास ॥५२॥

संस्कार - रचित अपने मन का—
देखा तूने सुन्दर सपना
फल लगा नियति की डाली में,

नटवर अपनी जग-लीला से—
सुख-दुःख के दृश्य दिखा देता।
हर रूप उसी के नर्तन से—
अवसर पर आकर बन रहता ॥५४॥

तेरे जीवन में सुखद रूप
आयेगा अति मोहक बनकर।
विषयों में भूल न खो देना
जीवन की पावन प्रेम-डगर ॥५५॥

नर रूप-ताल उर बाँध रहा
ममता की अपनी बाँहों से,
पर रूप-भाव रुकता न कहीं
विषयों की मादक चाहों से ॥५६॥

चाहों का पूर्ण समर्पण जब
प्रिय पात्र हेतु मन से होता,
उसका ही सचमुच हो पाता
शुचि प्रेम-सरोवर में गोता ॥५७॥

वासना-भरे मन से पहले
तन-भोग भले ही बने राह,
पर पावन प्रेम-सहजता से
मिट जाती उसकी छिपी चाह ॥५८॥

प्रिय से अपने कुछ पाने की—
इच्छा न कहीं कुछ रह जाती,
तब अकथनीय वह प्रेम - ज्योति
अन्तर में सहज उतर पाती ॥५९॥

यह प्रश्न नहीं, उर की आशा
प्रिय - पात्र किसे निज चुन पाती,
हर लहर स्वयं थिर होने पर
प्रिय उदधि सहज ही हो जाती ॥६०॥

कर्मों की लीला अवसर पर
लेकर फल - भोग उतर आती,
मोहक अदृश्ट की छाया में
जन का सत्कार स्वयं करती ॥६१॥

तेरी प्रिय चाह सफल होगी
मत चिन्ता का ले भूल नाम
उद्योग - भाग्य दोनो मिलकर
जीवन में करते पूर्ण काम ॥६२॥

यो कह नभ - वाणी शान्त हुई,
नल विस्मय मे यों बोल उठा
"हे, देव ! कौन तू कानों में—
वाणी का अमृत घोल उठा ॥६३॥

आशीर्वचन पहले पाया
अर्पित न कर सका भाव-सुमन।
साभार तुम्हारे चरणों पर—
मैं करता हूँ शतवार नमन! ॥६४॥"

विश्वास लिए वापस आया
पाया ज्यों सफल स्वप्न खोया।
आशा अपनी फलवती जान
नल भाव-मग्न होकर सोया ॥६५॥

⁂

उपवन - सर्ग

पावन प्रभात का समय रहा
ऊषा पूरब में झाँक रही।
यौवन की लाली में अनुपम
निज तन की शोभा आँक रही ॥१॥

आकर सुदूर से मलयानिल
शीतल सुगन्ध ले मन्द-मन्द,
सबको जीवन - संबल देता
होकर भी स्वाभाविक स्व-छन्द ॥२॥

व्यायाम - लाभ - हित राजा नल
उपवन में अपने टहल रहा,
विकसित सुमनों के मेला में
निज स्वप्न सोच कर विकल रहा ॥३॥

देखा तब कोमल कलियों का
किसलय में छिपकर हिल जाना,
मदमाती सजी तितलियों का—
मधुमय सुमनों से मिल जाना ॥४॥

बेसुध 'गुन - गुन' करने वाले
मधु - पागल भ्रमरों को देखा;
जो मोहक कलियों के विकास—
में ढूँढ रहे जीवन - रेखा ॥५॥

पत्ते कुछ श्रीफज ढँकते थे
नीचे आतें कुछ खस - खस कर।
देखा नल ने—कर परस झोर
वह पवन बढ़ा आगे हँसकर ॥६॥

देखा, कुछ कदली - स्तम्भों में—
दो सुघर स्तम्भ थे सटे हुए
परिधान हरित - से पत्र उन्हे
हिल - हिल ढँकने पर जुटे हुए ॥७॥

पुष्पित निकुंज के पास वही
वह फुदक कपोती विहर रही।
पाकर कपोत का प्रिय चुम्बन
भावो में भूली सिहर रही ॥८॥

कुछ आगे बढ़ने पर देखा
अति पुष्पित तरुवर कोविदार,
जिसकी मन - मोहक डाली पर
वह मोर विलस करता विहार ॥९॥

थिर हो मयूरिनी चोंच उठा
आहट लेती मयूर - मन की,
वह भी अपने मृदु पंख फुरा
नव रीति सिखाता चुम्बन की ॥१०॥

दोनो सिहरन भर बोल मधुर
वाणी का संयम कर लेते,
निज नपी - तुली मृदु वोली से
उपवन में भी रस भर देते ॥११॥

फिर मृदुल भाव से चोच मिला
वह मुग्ध शिखी माया रचता।
क्षण मौन भाव के इङ्गित से—
प्रस्ताव गुप्त ज्यो था रखता ॥१२॥

देखा नल सुघर कलापी का
परिरम्भ-सहित मधुमय विहार,
फूले तरु कोविदार पर ज्यों
मधुना-वसन्त - खगरूप प्यार ॥१३॥

नल के उर कोमल सरस भाव
धीरे - धीरे अब जाग उठे,
ज्यों हृदय - तार के बजते ही
मोहक अनेक नव राग उठे ॥१४॥

मुड़ दक्षिण दिशा - ओर देखा
सेमल तरु पुष्पित लाल - लाल।
ऊषा से होड़ मिलाने को
ज्यो सज्जित उसकी डाल-डाल ॥१५॥

मुहँबन्द कली सेमल की लख
तोते भावों से भर जाते
कुछ मधुर ठिठोली करने को
उड़-उड़ कर इधर-उधर जाते। १६॥

कुछ देख-ताक विषयी तोते
कलियों तक उड़ चपपट जाते,
सुनकर कागों की काँव - काँव
लज्जित होकर कुछ हट जाते ॥१७॥
जो चोंच मारते कलियों पर

उनका श्रम होता अर्थ-हीन ।
कर से सुन्दरता छूते जो
वैसे ही होते श्री - विहीन ।।१८।।

मृदु भाव जगे उर अवचनीय
वाणी की गति भी बन्द हुई,
नयनों में छायी मादकता
पैरों की गति भी मन्द हुई ।।१९।।

पहुँचा नल सहजन-तरु - समीप
देखा फूला जो श्वेत रंग,
जिसके नीचे मृग - मृगी युगल
कुछ अकन उठे कर नीद भंग ।।२०।।

नल लता-ओट सें छिप देखा
मृग ले अँगड़ाई कड़ा हुआ,
खुर से पलकें निज खुजला कर
निज आँखें स्वस्थ कर खड़ा हुआ ।।२१।।

दुम हिला मृगी अँगड़ाई ले—
मृग - तन पर पलके मल लेती ।
फिर सरस भाव से ताक सिहर
गर्दन पर गर्दन धर देती ।।२२।।

मृग - नयनों को उपमान जान
कुछ समय रहा उनको लखता ।
आखों का पानी इनको दे
सुन्दरी गयी, ऐसा लगता ।।२३।।

नल प्रकट हुआ, तब चौंक चपल
कर कान खड़ा लख नर आगे,
मखमली मृदुल घासों पर से
मृग भर छलाँग डर कर भागे ॥२४॥

मृग दूर चौकडी भरते ही—
जाते सबेग हरियाली पर,
ज्यों क्षितिज-ओर ऊषा-वन में
जाते हो चरने लाली पर ॥२५॥

मृग-ऊपर नभ से खग अनेक
उड चले साथ उर भर उमंग
माला-सी रच उड़ते नभ में
रवि-अभिनन्दन-हित सुमत्त रंग ॥२६॥

प्राची की ओर नभग जाते
अति विनय-भाव से हर्षित-मन
ऊषा-समीप तरु-डाली से—
पाने को पावन प्रिय-दर्शन ॥२७॥

नल ने चढ टीले से देखा,
प्राची की अनुपम लाली थी,
अब वृक्ष-राजियो से ऊपर
बढती ऊषा मतवाली थी ॥२८॥

तरु-राजि-रागमय अञ्चल से—
तब शान्त बाल रवि उदित हुआ
सात्विक सुन्दरता देख सहज
नल का अन्तर अति मुदित हुआ ॥२९॥

उस ज्योति-रूप नारायण को—
नल माथ झुका कर नमस्कार,
शुभ अकथनीय शोभा-श्री वह
रुक लगा निरखने बार-बार ॥३०॥

स्वर्णाभ पंखयुत उडती-सी
पूरब बगुलो की पाँति चली,
रवि के स्वागत में रची हुई
चम्पक माला की भाँति भली ॥३१॥

पुष्पित मधुमय तरु-शिखरों पर
लेने पहुँचे खग मधुर धूम,
मादक कलरव मे करते थे
ज्यों दिनमणि-वन्दन विविध रूप ॥३२॥

मंजरित आम्र-तरु-डाली से—
मतवाली कोयल बोल पड़ी,
पंचम स्वर से दोलित होकर
मानस की लहरी डोल पड़ी ॥३३॥

कुन्दन-रँग-रंजित प्राची में—
तरु-अन्तराल से पार हुई
उस पार विचरती मृग-माला—
तक स्वर-लहरी तत्काल गई ॥३४॥

मृग मधुर राग के अनुरागी
कर श्रवण सजग ताके ऊपर।
क्षण भर अपने को भूल गये
सुन राग-प्रसारित सुन्दर स्वर ॥३५॥

झुरमुट पर बगुलों का वह दल
निज पंख खोल क्षण व्यस्त हुआ।
लहराती-सी स्वर-लहरी सुन
उर-व्यथा भूलकर मस्त हुआ ।।३६।।

विकसित सुमनों की जगमग में—
सज्जित भू पर किरणें पड़तीं।
नल सोचा—स्वर्णिम आभा में—
इस थल बाला कैसी लगती ? ।।३७।।

क्या श्यामा उसको बुला रही—
अपने मोहक पंचम स्वर से ?
कोमल किरणों की डोर पकड़
क्या आकर उतरेगी फिर से ? ।।३८।।

तितली-से बहुरंगी पर ले
किरणों पर चढ़ यदि आ जाती,
क्या गगन नाँघ कर आने का—
आशय श्यामा से कह पाती ? ।।३९।।

संवाद-विषय का चिन्तन कर
राजा नल का मन सिहर पड़ा।
क्षण भाव-श्वास के स्वागत में—
ज्यों वक्षस्थल कुछ उभर पड़ा ।।४०।।

चल पड़ा वहाँ से आगे को
विश्वास मात्र आधार लिये।
कुछ बोझिल-से पग पडते थे
यौवन का भारी भार लिये ।।४१।।

उपवन का दिव्य सरोवर भी
आगे दिखलायी देता था,
अपनी नैसर्गिक शोभा से—
मन आकर्षित कर लेता था ।।४२।।

नव -बेलि - अवलियाँ सुमनमयी
दो पुष्कर - तट तक जाती थीं ।
अति पावन सुपथ - किनारो से—
ज्यो स्वर्ग - राह बतलाती थीं ।।४३।।

सुरपति - सा चलता नल शोभित;
स्वागत में ले ज्यो सुमन - माल
अप्सरियाँ शोभित पाँति सजा
परिधान पहन हरिताभ - लाल ।।४४।।

बुलबुल - दल था क्रीड़ा करता
भय - रहित बेलियो पर चढ़कर
नाना परियों की शोभा ज्यो—
इंगित करता उड़ इधर - उधर ।।४५।।

नृप तट - निकुंज के पास पहुँच
लख शोभा आत्म - विभोर हुआ ।
शुचि श्याम नीर, विकसित पंकज,
मादक जल-खग - कलरोर हुआ ।।४६।।

गुन - गुन करते अलि मधुग्राही
विकसित सुमनों तक आ जाते ।
कुछ बन्द रातभर जीवित बच
उड़ भग फिर नव जीवन पाते ।।४७।।

नव सज्जित सुघर तितलियो की—
सुमनों पर छटा निराली थी
कोमल पाँखो की छाया में—
खिलती पराग की लाली थी ।।४८।।

चकई - दल नाना युग्मों में—
निशि - व्यथा भूल मिल विहर रहा
पर - विलसित जल-उर-कम्पन पर
निज प्रेम - कला में निखर रहा ।।४९।।

कुछ युग्म देख प्रतिबिम्ब चौक
जल - कम्पन से उड चल देते ।
जाकर तट पर फिर शान्त बैठ
प्रातः की मधुर धूप लेते ।।५०।।

तट पर वह चकई एक रही
पर फुरा अर्द्धतन - नग्न हुई,
चकवे के सिर पर पंख डाल
मादक भावों में मग्न हुई ।।५१ ।

रस से भर जाती चञ्चु मिला,
फिर मृदु पखों की वह सिहरन,
स्वर्गिक सुषमा के सर - तट ज्यों
रति - काम सहज खगरूप मिलन ।।५२ ।

बह चली हवा मतवाली कुछ
सरसी - उर कम्पन हो आया ।
कोमल - कम्पित लहरों - समान
नल का कोमल उर लहराया ।।५३।।

तितली के पर झकझोर लिपट
भ्रमरो से राग मधुर लेकर,
कलियों का चुम्बन ले समीर
राजा से मिल बढ़ता सत्वर ॥५४॥

ध्यानी बगुले का ध्यान भंग
होते नृप ने जल में देखा।
मृदु सुमन-शरों से बचने का
किसमें है कौन कहाँ लेखा? ॥५५॥

क्षण रस-लीला से सारस ने
मादक ध्वनि में क्या बोल दिया?
चौकी कुररी कुछ दूर भगी
क्षण नृपति-ध्यान निज ओर किया ॥५६॥

प्राची-नभ मे वह दीख पड़ी
क्या अंशु चढ़ी आती बाला?
सखियो के सँग बाला न रही
आती वह सजी हंस-माला ॥५७।

उस पार गगन से [illegible]मराल
आते उड़ स्वप्निल माया से,
जागरण-लोक अब छान रहे
होकर विरक्त भ्रम-छाया से ॥५८॥

शुचि सुघर सुनहले पखों को—
वे एक साथ थे हिला रहे;
ज्यों सरस जलाशय-क्रीड़ा-हित
नभ की सुषमा को बुला रहे ॥५९॥

जलगत क्रीडा - हित हृंस आज
सर सरस जान उस ओर मुड़े ।
विषयी खग डर फर - फर भागे
मिल कई झुण्ड नभ - ओर उड़े ॥६०॥

निर्बल खग त्याग सरोवर सब
उड़ भाग चले नभ त्याग मही,
अवगुण जेसे भगने लगते
उर दिव्य गुणों के आते ही ।६१॥

आये तड़ाग - तट हृंस उतर
चमकीले अपने पंख साध ।
कोमल किरणें खगरूप सजी
ज्यों उतर रही हो पंक्ति बाँध ॥६२॥

नल अपने मन मे सोच रहा
कितने इनके ये सुन्दर पर
शोभा जैसे मराल - दल में—
पंखों के स्वर में रही विचर ॥६३॥

फिर विकच कंजयुत पानी में—
वे क्रीड़ारत हो उतर पड़े ।
शम्पा - सुमनो के घन - वन ज्यो
शशि के शिशु क्रीडित विखर पड़े ॥६४ ।

कुछ आगे चल उसने देखा
पंखों का सुन्दर स्वर्ण - रंग ।
जगमग - जगमग उनकी शोभा
लखकर मन में रहा गया दग ॥६५॥

वह श्रान्त पथिक - सा हंस एक
रह गया धूप लेता तट पर।
फैलाकर पर फड़कार मौन
अँगडाई लेता सिहर - सिहर ॥६६॥

मजुल मोहक पर हिला-डुला
वह चञ्चु-लभ्य अँग सहलाता,
फिर मोड़ पैर पर सिरपर धर
विश्राम - हेतु मन बहलाता ॥६७॥

अपनी मस्ती मे पीछे से--
आते मानव को लख न सका।
नल ने धीरे से पकड़ लिया
उड़ने का श्रम निष्फल उसका ॥६८॥

कुछ क्षण सयत्न छटपटा और
निज चञ्चु चला ध्वनि बोल चिकर
फिर दीन - भाव से हो निराश
गति - हीन हुआ वह चिन्तापर ॥६९॥

आहत-सा स्वर सुनकर साथी
तज नीर-सतह कर ध्वनि फर-फर
निज बोली मे फटकार चले
ज्यो राजा को कहते तस्कर ॥७०॥

जैसे जगमग श्री उड़ भागी
सर से अनेक खग-रुप बना।
प्रतिबिम्ब रुप आसन शतदल,
ज्यों उचित उन्हे नीचे धँसना ॥७१॥

नभ - पथ से चक्कर बार - बार
वे लगे काटने मँडराकर।
फिर सर - समीप तरुवर - ऊपर
आ बैठ गये सब मुड़-मुड़ कर ॥७२॥

पादप - शिखाग्र पर हंस - पाँति
सकरुण आँखों से निरख रही।
हा ! मित्र विवेकी विछुड़ रहा,
वह सभा सोचती बिलख रही ॥७३॥

देखा राजा ने हंस सँभल—
मानव बोली में बोल रहा।
वाणी विवेक से भरी हुई
आँखों का भाव अलोल रहा ॥७४॥

"देखा तडाग - तट पर तुझको
उमडे वसन्त के वैभव में,
कुसुमित लतिका की छाया में
मधुमय खग - दल के कलरव में ॥७५॥

श्यामा - स्वर जब कलरव बटोर
कर चला पार तरु - सिर - रेखा
ऊपर सारस - दल मे विचलन—
लख भाव - मग्न तुझको देखा ॥७६।

जाना, है कोई महापुरुष
प्रेमी सात्विक सुन्दरता का,
छविमयी प्रकृति की लीला में—
यह ग्राहक दिव्य सरसता का ॥७७॥

मन्दिर के गुरु घंटों की ध्वनि—
टकरा कर विटप - राजियो से—
अम्बर - पथ से ऊपर चलकर
टकरायी हंस - साथियों से ॥७८॥

मादक विचलन से पंख हिला
साथी मेरे आ रहे इधर,
उस समय छदो के डोलन में—
तू मिला रहा भावों का स्वर ॥७९॥

फिर वीणा-ध्वनि से लिपट पास—
तेरे वह शंख - नाद पहुँचा।
क्षण आँख बन्द कर ध्यान किया
तब तुझे ईश का भाव जँचा ॥८०॥

समझा मैने यह भक्त सुजन
कञ्चन से इससे राग नही।
ऐसें नर से भय खाने की—
तब कहाँ हृदय मे बात रही ? ॥८१॥

देखा मैने बाजाहत हो—
जब गिरा परेवा था भूपर
टहनी पर रुदन परेई का—
सुन, देख हुआ तू करुणापर ॥८२॥

'सन्ध्या को अपने नीड़-पास
किस भाँति अकेली जायेगी ?
चारा - हित बच्चे झाँकेंगे
तो व्यथा मात्र दर्शायेगी ॥८३॥

शायद तूने यह बात सोच
खग-देह हाथ से सहलायी,
उसकी रक्षा की पूर्ण युक्ति
उपवन-माली को बतलायी ॥८४॥

समझा मैंने, यह देव-पुरुष
कोई उपवन मे है आया,
जिसकी करुणा की चितवन से—
उपवन यह कुसुमित हो पाया ॥८५॥

उलटी कठमुगदर-जोडी-सी
जाँघो की सुन्दर सुदृढ गठन
चौडा मोढा, छाती विशाल
मुश्कों मे शौर्यपूर्ण गठन ॥८६॥

कटि उर आयत मृगराज सदृश
गति उसको भी लज्जित करती
मुख पर वसन्त की श्री छायी
हर अँग में ज्यो शोभा भरती ॥८७॥

ऐसा तव अनुपम रूप देख
समझा यह कोई और नहीं,
नल जान उतर आये हम गन
क्या हमें नही था डार [illegible] ? ॥८८॥

रे नृप, तेरा वह कपट और
यह व्याध-भाव मैं जान न [illegible]
कैसी यह कपट-भरी लीला ?
सचमुच मैं तुझे परख न [illegible] ॥८[illegible]

सुत एक मात्र निज जननी का,
उसकी आँखों का मैं तारा।
क्या पता उसे मैं फँसा यहाँ
आखेटक राजा नल द्वारा ॥९०॥

वत्सलता के प्रिय भावों से—
सन्ध्या को पथ जब देखेगी,
आती सुदूर से हंस - पाँति
कितनी आशा से परखेगी ? ॥९१॥

मित्रो का दल जब पहुँचेगा
कैसे उसको धीरज होगा ?
कटु उलझन मे क्षण कथन हाय !
दुख का अन्तिम स्वर भर देगा ॥९२॥

गिरती आँसू की बूँदों के—
दर्शन - हित बूँदो का मेला—
जब होगा, साथी पायेंगे
वह दुर्निवार वेदन - वेला ॥९३॥

भोले बच्चों को नीड़ छोड़
हा ! प्रिया दौड़ती आयेगी।
सबकी आँखें तब सजल देख
हंसो मे मुझे न पायेगी ॥९४॥

हा ! उसके उर की उलझन में—
जिज्ञासा का कटु स्वर होगा।
माता का करुण विलाप प्रश्न—
का उत्तर उसे स्वयं देगा ॥९५॥

वह हृदय थामकर बोलेगी
"हा ! प्रियतम, क्यों, किस ओर चला ?
असमय की ऐसी वेला में—
क्यों तू मेरा सँग छोड़ चला" ॥९६॥

साथी समझा घर जायेंगे
निशि में उदास वह वन होगा
फिर भेंट गले में गला डाल
दोनो का साथ रुदन होगा ॥९७॥

वेदना - भरी उस कुहकन से—
तरु - पत्तों मे होगा कम्पन
चन्द्रिका - छिटी रजनी में रव
होगा क्रन्दनमय 'सनन-सनन' ॥९८॥

पत्तों के अन्तराल से जब
शशि-किरणें उन तक पहुँचेंगी,
तब एक दूसरे के मुहँ पर
दुख - भाव देख क्या सोचेंगी ? ॥९९॥

किरणों से लिपट अश्रु - बूँदे
ढुलकेंगी उनकी आँखों से ।
चौंधी में एक दूसरे के—
आँसू पोछेंगी पाँखों से ॥१००॥

रोती - रोती जब भू पर गिर
मम प्रिया कहेगी 'हाय ! कन्त !'
तब शरगत भोली सती-सदृश
हा ! उसका होगा तलफ अन्त ॥१०१॥

माता भी सँभल न पायेगी
लख पुत्र-बधू की गत लीला।
गिरकर देखेगी आँखो से—
नैराश्यपूर्ण नीला - पीला ॥१०२॥

सर्वस्व गवाँकर जीने का—
अनुभव वह क्षण भर कर लेगी,
फिर जर्जर तन अवनी पर तज
सुर-पुर का पथ वह धर लेगी ॥१०३॥

रजनी में किसी भाँति रहकर
प्रातः जब शावक जागेगे,
पाकर कुलाय मे हमे नही
आशा से बाहर झाँकेगे ॥१०४॥

मुहँ खोले अपनी चोंच उठा
'चूँ-चूँ' कर हमें न पायेगे।
हा ! भोले दिनभर क्षुधित पड़े
असहाय तलफ मर जायेगे ॥१०५॥

फल-मूल आदि मुनि-सम भोजन
आना - जाना पथ अम्बर से।
अपकार कहीं तन से न हुआ,
थोड़ी ही बोली कल स्वर से ॥१०६॥

वन-उपवन शान्त सरोवर में—
हम जहाँ पहुँचते साथ सकल,
भावुक जन भाव-मग्न होते
लोलुप हो जाते देख विकल ॥१०७॥

नृप, तेरे कोषागार हेतु
इन पंखो मे कितना सोना ?
जितना रस स्वर्णिम भावो मे
उतना न कही पाकर होना ॥१०८॥

मै ने तो अपनी बात कही
तू कर जो चाहे मन तेरा"
इतना कह सजल-नेत्र पक्षी
नत-चञ्चु उधर से मुहँ फेरा ॥१०९॥

सुन बात भूप की आँखों में—
झलके जो आँसू कोने से,
अब टपक पड़े, मोती लड़ियाँ—
करती मिलाप ज्यो सोने से ॥११०॥

सुरपति होता भयभीत सदा
लख तेज-भरी जिन आँखों को,
उनसे गिर करुणा की बूँदे
शीतल करती खग-पाँखो को ॥१११॥

"पक्षी, तू सफल पारखी है
पर सरल - हृदय अति ही भोला
सौन्दर्य मात्र ही लखने को—
पकड़ा तुझको," नृप नल बोला ॥११२॥

"आ रही उड़ी जब हस-पाँति
नभ-सुषमा पास बुलाती - सी,
रवि - किरणों से कर लहाछेह
मादकता मे बल खाती - सी ॥११३॥

वीणा-स्वर-सयुत घटा - ध्वनि
हसो से जाकर टकरायी ।
मन्दिर की टनन - टनन ऊपर
ध्वनि हनन-हनन कर छितरायी ॥११४॥

आहट ले वन्दन - वाद्य - साथ
पखो का चलता मृदु दोलन,
उनके उन मोड़ों में बेसुध
किरणो का होता था नर्त्तन ॥११५॥

उस समय परो की शोभा-श्री
नीले अम्बर मे खिलती - सी,
उमड़े पावस के घन मे ज्यों—
बिजली की कलियाँ हिलती-सी ॥११६॥

उस स्वर्णिम श्री से ही मानो
उपवन की कलियाँ विहँस रही ।
किरणे पराग का रूप बदल—
अलि-चुम्बन-रस में विलस रही ॥११७॥

कल मादक ऐसे पंखों को—
मैं देख सकूँ, यह हुई चाह ।
करगत करने के लिये तुझे
पकड़ी मै ने यह कपट - राह ॥११८॥

देखा, पर तव वैसे ही हैं
बालारुण - कर से रचे हुए,
शशिगत इठलाती शोभा ज्यों
लेकर अवनी पर बचे हुए ॥११९॥

इसलिये तुझे धर लिया, विहग !
उर अन्य न कोई भाव रहा।
लो, छोड़ दिया, जा सकते हो
इच्छानुसार मन करे जहाँ" ॥१२०॥

तन शिथिल, भाव-सुख-साश्रु-नयन
खग बैठा जाकर डाली पर
आँसू से भीगे पंख फुरा
फड़कार रहा वह सिहर-सिहर ॥१२१॥

कर से पर का जो अंश दबा
निज चञ्चु चला समसार किया।
नृप-ओर वदन कर फिर सभाव
मानवता का गुरु - भार लिया ॥१२२॥

साथी खग चक्कर काट चकित
उस पादप पर आसीन हुए।
उस दया - मूर्त्ति नर - पुंगव के—
शुचि दर्श - भाव में लीन हुए ॥१२३॥

आनन्द - भरी आँखों से फिर—
सबकी जल - बूंदे ढुरक पड़ी
कुछ निराधार, कुछ पत्तों से—
टकरा अवनी पर खरक पड़ीं ॥१२४॥

शशि-ओर सुघन में घन - शावक
कौमुदीकलित ज्यों सरस रहे
निशि-पति-प्रेमी प्यारे चकोर—
को दिव्य सुधा - रस बरस रहे ॥१२५॥

राजा किंचित हट जा बैठा
मृदु माधविका की कुंज-छाँह
गुंजित मिलिन्द-रव खग-कूजित
आता सुमंद मधु-गंध-वाह ।।१२६।।

फुलचुहियाँ फुदक-फुदक विकसित—
फूलों से आकर लिपट रही
मधु-पगी तितलियों को भ्रमवश
चल सुमन जान ढिग रपट रहीं ।।१२७।।

फिर हंस भूप के निकट पहुँच,
कर बोल उठा मुद्रा गँभीर,
“उपकार-भाव तन-योग्य समझ
आया समीप हे, दया-वीर ! १२८।।

वन दिवस फूल से फूल मिला
समता की तृषा शान्त होगी।
मृदु हास लिये निशि-वेला में
शशि-समता-भार कौन लेगी ? ।।१२९।।

विकसित वसन्त की श्री में भी
वह कर्णिकार मन मार रहा
वामांगी के पग नूपुर का—
रुनझुन-ध्वनि-समय विचार रहा ।।१३०।।

कुछ समय बाद खिलने वाली
वह अमलतास की नत डाली,
शृंगार लिये सजने वाली
मृदु बाहु-टेक-हित मतवाली ।।१३१।।

सौन्दर्य - भार लेकर बाला
उपवन में घूम थकित होगी
उस डाली पर भुजमूल टेक
तरु - शोभा देख चकित होगी ।।१३२।।

जब कुसुमित अमलतास - नीचे –
होगी तेरे सँग रूपवती,
रति उसे देख लज्जित होगी
जैसे छूने से लाजवती ।।१३३।।

फूलों में भी सिहरन होगी
नूपुर के मोहक वादन से।
मादक विकास उनका होगा
मधु-भाव-भरी-सी कम्पन से ।।१३४।।

बेसुध मधूक तरु कूच खड़े
निज लाज - वसन खोने वाले
रसवन्ती की रस - क्रीड़ा से—
रस लेकर ज्यों चूने वाले ।।१३५।।

उसके उपवन में आते ही
सुषमा उमड़ेगी विकसित हो
बहुरंगो सुमन - सरोवर ज्यों
शोभा बिखेर दे लहरित हो ।।१३६।।

मृदु हास-पूर्ण चल चितवन से
खञ्जन सलाज भगने वाले
नासिका सुघर लख लज्जित शुक
आपस - में ही लड़ने वाले ।।१३७।।

सहकार डालियाँ बाला से—
ले विनय-भाव झुकने वाली।
रस-भरी प्रेम-युत बोली भी—
छिपकर कोयल सुनने वाली ॥१३८॥

उर-अञ्चल की मृदु खिसकन लख
किसलय में कलियाँ छिप जाती।
नयनों का वह उन्मीलन लख
मधुकरी सकुचती शर्माती ॥१३९॥

सब अंग मनोहर अपने में
यौवन का मदिर उभार लिये,
धरती पर जैसे आयी वह
स्वर्गिक सुषमा का सार लिये ॥१४०॥

तन में अनंग की अँगड़ाई
आकर जैसे कुछ कह जाती,
भावों की पाकर सुघराई
मोहकता का नव स्वर भरती ॥१४१॥

ऐसी वह बाला दमयन्ती
भूपाल भीम की एक सुता,
जिसके प्रताप यश से डर कर
भागी विदर्भ की नर-पशुता ॥१४२॥

नृप भीम प्रजा-पालक दयालु
अति धीर साहसी कर्म-वीर।
जन-रक्षा-रत जीवन उसका
शुचि शान्ति-समर्थक धर्म-वीर ॥१४३॥

ऐसे राजा की वह कन्या
शुचि व्यवहारों में पली हुई
तन-शोभा मन की ही अनुकृति
ज्यों शृंगारों में ढली हुई ।।१४४।।

जैसे निशि में शशि होने पर
चन्द्रिका विलस करती नर्तन
वैसे ही उससे राजमहल—
में होगा कान्ति-कला-वर्तन ।।१४५।।

अँग-चालन-छवि नव ज्योति लिये
वातायन से कर चकाचौंध
निशि-बेला में ऐसी होगी
होती जैसे घन-बीच कौंध ।।१४६।।

मणि-रत्न-खचित दीवारों में—
उसकी छवि प्रतिबिम्बित होगी
शत बालायें तब सेवा में—
मिल एक साथ सज्जित होंगी ।।१४७।।

सहसा तू समझ न पायेगा
किस रमणी का सेवा-भोगी,
नूपुर-रव ही बतलाने में—
होगा अवसर पर सहयोगी ।।१४८।।

सब अंग-मनोहर दमयन्ती—
के गुण सुख के आधार बनें
सहचरी रूप में पा उसको
साकार बनें सुख के सपने ।।१४९।।

उसकी सुन्दरता की छाया—
में सुन्दरतम की राह मिले,
भावी पथ के अवसर पर भी
उसके जीवन से छाँह मिले ॥१५०॥

सुन्दरता से सहृदयता का—
जिसके जीवन में सफल मेल,
वासना साधना बन जाती
जीवन बन जाता सहज खेल । १५१॥

इसलिये हुई यह अभिलाषा,
उससे हो तेरा गठ-बन्धन ।
वह बन्धन जो बन्धन छोड़े
हो सुन्दरता - पथ सार - मिलन ॥१५१॥

तेरी सम्मति यदि पा जाऊँ
चल पड़ूँ सदल मै आज अभी,
उतरूँ उपवन में जहाँ नित्य
आती सखियों - सँग वैदर्भी ॥१५३॥

नृप समझ गया, अम्बर - वाणी—
पूरी करने यह आया खग ।
आशा की पावन धारा में—
गोता ले मन बह चला उमग ॥१५४॥

मन समझ, सँभल नल बोल उठा
खग, तेरी अभिलाषा अमोल ।
बातें हैं तेरी सुधा - भरी
रख दिया मित्र, निज हृदय खोल ॥१५५॥

कौतूहलवश जब चित्रकार
मम मोद-हेतु चित्रित करता
उस सहज सुन्दरी की शोभा—
से सचमुच वह विस्मित करता ॥१५६॥

चित्रित करता नर एक साथ
रच बाम भाग में रूपवती
तो विहँस चित्र मम रच देता
नीचे लिखता 'नल-दमयन्ती' ॥१५७॥

गुण-सुन्दरता में अनुपम वह
वन्दीजन गाकर बतलाते,
सेवा-हित मेरे पिता-पास
प्राय: विदर्भ से जो आते ॥१५८॥

छविगान-कला में गायकजन
रमणीय रूप चित्रित करते।
धरती पर संभव रूप वही
दमयन्ती में इंगित करते ॥१५९॥

सुन्दरता ही यदि रूप धरे
मोहकता की मृदु माया से
कथनानुसार उनके वह भी
अति लघु उसकी उस काया से ॥१६०॥

दर्पण-मंडित ले चित्र एक
माता-ढिग आयी थी दूती।
दे गयी, उसे देखा मैं ने,
सचमुच वह सुषमा की युवती ॥१६१॥

कल ही की तो यह बात रही
आये कुछ देश - भ्रमणकारी :
उनकी चर्चा से जान पडी
वैदर्भी की तन-श्री न्यारी ।।१६२।।

मेरी इच्छा के पहले ही
सहमत है मेरे सब परिजन
हे, देव - विहग ! अम्बरगामी,
कर सकते हो तुम अभी गमन ।।१६३।।

इच्छानुसार वन - उपवन में
फल मूल आदि भोजन कर लो
अम्बर - पथ शुभ सज्जित करते
आगे समुचित निज पथ धर लो ।।१६४।।

मानूँगा तेरी बात सदा
तू मेरे जीवन का दर्शक
ऐसा ज्ञानी साथी पाकर
जीवन - पथ होगा आकर्षक ।।१६५।।

हंस-गमन सर्ग

राजा के चारो ओर समुद
मँडराकर चक्कर बार-बार—
खग रहे लगा, ज्यों जगमग-जग
आरती दिव्य, दीपोपचार ॥१॥

राजा सप्रेम था निरख रहा
हंसों की अनुपम वन्दन-विधि।
कलरवयुत कुछ पर-ध्वनि 'हर-हर'
लख मिली उसे ज्यो नन्दन-निधि ॥२॥

फिर एक ओर से सिमट सभी
उड़ चले गगन-पथ छितरा कर,
नीले अम्बर मे पीत रंग
तारक-बूटी-सी फहर-फहर ॥३॥

छितरा-छितरा फिर सिमट-सिमट
कलध्वनि में करते मधुर रोर,
नभ की आनन्द-लहरियों में—
ज्यों लहरिन मस्ती में विभोर ॥४॥

नृप खड़ा देखता रहा उन्हें
चुपचाप मोह उद्‌गार लिये,
अपलक आँखों से लगातार
आशा का उर आधार किये ॥५॥

घर समाचार-हित उनमें से—
उत्तर-नभ उड़ दो हंस चले
ज्यो सधे काम-धनु-सुमन-वाण
दो निबुक चले नभ-बीच भले ॥६॥

मुडकर विदर्भ को शेष चले
ज्यों काम-शरासन से सध कर
वह कौन कामिनी इस जग मे
घायल न करे जिसका अन्तर ॥७॥

उड़ चले दूर नभ पंख हिला
कुछ-कुछ आभासित हो पाते,
ज्यों गगन-राह से गुरु-पद पर
शुभ भाव-सुमन चढ़ने जाते ॥८॥

राजा की आँखों से ओझल
हो गया तुरत ही दल-मराल,
अन्तर पर अद्भुत आशामय
जादू के मोहक भाव डाल ॥९॥

नृप आया उपवन-द्वार और
चल दिया तुरत हो रथारूढ़।
देखा जन-हित निज राज-काज
पर हृदय समस्या रही गूढ़ ॥१०॥

सब काम यथाविधि हुए किन्तु
मन विकल कहीं लग सका नहीं
उर प्रेम-पिपासा जगी सहज,
पर शान्ति-भाव भग चला कहीं ॥११॥

नभ से मराल-दल चला दिव्य
पथ-श्री लगती आनन्दमयी
दमयन्ती से संवाद-कला—
की मधुर कल्पना जगी नयी ॥१२॥

देखा दल ने मधूक-तरुपर
'चह-चह' करते खग रस-विभोर।
नभ पर ध्वनि सुन फुरकार उड़
मतवाली मधु की डाल झोर ॥१३॥

संचय करती सुन्दरियों पर
मादक मधूक टप-टप गिरते,
रस का चुम्बक ज्यों उनमे पा
डाली तज उनसे जा मिलते ॥१४॥

श्यामा की मादक कूक निकल—
जो पहुँच विपिन के छोर रही,
स्वर की मृदु धारा में सबको—
जो एक साथ ही बोर रही ॥१५॥

आगे चलती पर-ध्वनियों के—
पीछे वह ध्वनि फिर जा न सकी।
'हर-हर' मराल-पर-ध्वनि से डर
कोयल डाली पर दबक रुकी ॥१६॥

अनुकरण-लीन बालक भोले
कोयल का स्वर फिर पा न सके।
मिलती आहट से भाव तोड़
नभ-ओर ताक मन में चौके ॥१७॥

स्बर्णिम हसों का वह ताँता
अम्बर को अति शोभित करता।
सुषमा का जादू डाल चपल
अपनी गति से आगे बढ़ता ॥१८॥

आखेटक जो मृग-दल-पीछे
करते पीछा ले धनुष-बाण,
सब लगे देखने नभ खग-दल
मृग भगे दूर, पा गये त्राण ॥१९॥

सर में क्रीड़ारत वालाये
पर-ध्वनि सुन ताकी गगन-ओर
दर्शन-बाधक निज बिखरे कच
पीछे झट करती थी बटोर ॥२०॥

जल-भीगी आखों से फिर भी
सुषमा खग-दल की लख न सकी
तट-ओर चली ले श्लिष्ट वसन
अधनंगी लज्जा-भार झुकी ॥२१॥

कर शुष्क वसन ले आँखें मल
ताकी अम्बर में जब विह्वल,
तब तक सुन्दर दल हंसो का—
हो गया दृगों से भी ओझल ॥२२॥

बैठे मेंड़ों पर कृषक रहे—
लहराती लगी बालियाँ लख,
मस्ती के गायन बन्द किये
नभ दल-मराल-सौन्दर्य निरख ॥२३॥

उनके गानो की टीप मधुर
जो पहुँच ताल के छोर रही,
ऊपर भी मस्ती मे उमड़ी
वह पहुच गगन की ओर रही ॥२४॥

सहसा वह टीप महमती-सी
कुन्दनमय पंखो से लिपटी।
क्षण कृषक जनों की आँखों मे—
उड़ती नभ-शोभा नही अँटी ॥२५॥

गानों की मादक टीप और
लेकर सँग मे जन-कोलाहल,
हो गये हंस सब क्षण में ही—
तृष्णा दे उनसे भी ओझल ॥२६॥

भोले किसान कुछ हार-बीच
थे भून रहे जुटकर होराह,
घन सम उमड़े-से धूम्र-बीच—
से चले हस धर गगन-राह ॥२७॥

जगमग हंसों की छटा दिव्य
तब दीख पड़ी नभ में अनूप ॥
ज्यों अम्बुधि-मन्थन वाष्प-वीच—
से प्रकटित श्री बहु नभग-रूप ॥२८॥

धूएँ सुदूर ऊपर जाकर
हो जाते अम्बर मे विलीन;
जग की नश्वरता सूचित कर
मिटते नभ मे हो रूप-हीन ॥२९॥

श्रीयुत हंसों का दल सुन्दर
चल पड़ा सहज गति में चञ्चल,
सूचित कर क्षणभंगुर वैभव
क्षण-बाद हुआ वह भी ओझल ।।३०।

अगसार सजीले उपवन में—
मन मुदित युवतियों का था दल।
पुष्पित निकुज में क्रीडारत
कल-कुसुम-कुन्तला सुख-विह्वल ।।३१।।

कुछ ले, विकसित पाटल प्रसून
केशों को अपने सजा रहीं
नव ज्ञात-यौवना उनमें कुछ
लख इधर-उधर अति लजा रहीं। ३२।

हर-हर' अम्बर में पर-ध्वनि सुन
निकलीं वे सब ऊपर ताकी।
ऐसी गति में उड़ चले हस,
पा सकी एक ही बस झाँकी। ३३।।

तज कुज अकेली आहत-उर
प्रोषित-पतिका उस काल चली,
निज बिखरे कच श्लथ वसनो को-
क्षण भर रुक तनिक सँभाल चली ।।३४।।

पर वह खग-दर्शन पा न सकी
बाहर चुप खडी निराश हुई,
खग-श्री-वर्णन सखियों से सुन
निज भाग्य विचार उदास हुई ।।३५।।

ताकी जब मुख निज ऊपर कर
श्यामा अबला कर आश भंग,
छाया नयनो में श्याम गगन
पर कल्पित खग-दल स्वर्ण रंग ॥३६॥

तरु-पाँति-सघन छाया में जो—
जा रहे पथिक धर सरल राह,
जा खुले ठाँव झट देख सके
फिर भी मन मे रह गयी चाह ॥३७॥

झूरमुट पर बैठे बक ध्यानी
लख हस-राह नभ उड़ भागे।
तरु-नीचे मृग जो ऊँघ रहे
कर श्रवण सजग उठकर जागे ॥ ८॥

इस भाँति चले सब देव-हंस
पथ में निज कौतूहल भरते,
भावुक जन बारक निरख उन्हे
फिर दर्शन का प्रयास करते ॥३९॥

आगे वन का वह दृश्य जहाँ
नाना खग-मृग थे टहल रहे,
निर्झर-समीप से जल पीकर
अपने दल मे कुछ विहर रहे ॥४०॥

अम्बर पर रव सुन नाहर भी—
कुछ दूर तमक कर गरज पड़ा,
मुख ऊपर कर दल-हस निरख
वह हुआ सजग कर करज कड़ा ॥४१॥

भागे छलाँग भर हरिण उधर
जा रही जिधर नभ हंस-पाँति ।
ऊपर मराल, मृग-दल नीचे
धावित सवेग प्रतिबिम्ब-भाँति ।।४२।।

वन-छोर पहुँच सरपत-समीप
मृग-दल अदृश्य हो गया चपल ।
उस पार सघन तरु-राजि नाँघ
नेत्रों से हुए नभग ओझल ।।४३।।

दिन का वह पहर तीसरा था,
जब आया पर्वत ऋक्षवाण ।
ढालों के पादप-शिखरों से
फर-फर खग करते उड़ प्रयाण ।।४४।।

ढुनमुन चलते गिरि-ढालों से—
वे भेड़-बकरियों के थे दल,
क्षण ऊपर रव तब अकन चकित
भोले अति जीव हुए चञ्चल ।।४५।।

गिरि-वन की उस हरियाली के—
ऊपर से क्षण भर खग-उड़ान,
ज्यों नर्त्तन-वश वन-कर्णिकार—
के सुमन उड़ चले आसमान ।।४६।।

मधुमास-मिलित गिरि-वैभव में—
छाया नव भाव मधुरिमा का ।
चुपचाप खड़ा वह आँक रहा
विस्तार सहज निज गरिमा का ।।४७।।

बेसुध नर्त्तनरत मतवाले—
कुसुमित तरु-नीचे रहे मोर।
थीं निरख मुदित अति मोरनियाँ,
वे चौंक पड़ी सुन नभग-रोर ।४८॥

पुष्पित डालो को विलसित कर
देखा तो नभ में हंस कहाँ ?
विषयों में रास रमाने पर
फिर कहाँ दरस का भाग्य रहा ? ॥४९॥

वर्त्तुलाकार रच पंक्ति हंस
भूधर - ऊपर से हो चलते,
कर-रजित शृंगों के समीप
ज्यों गले बीच माला बनते ॥५०॥

नर्मदा नदी का पुलिन भाग
प्रमुदित प्रतिबिम्ब निहार रहा,
मधु-सज्जित विटप-वेलियो से—
पाया था नव शृंगार नहा ॥५१॥

सरिता में पक्षी कर नहान
ले रहे धूप तरु-डालो पर
चरवाहे रेवड़ साथ लिये
गायन करते थे ढालों पर ॥५२॥

बगुला-दल तक आनन्दित था
कर रहा श्रवण उन गानों का।
हो गये विहग सब अस्त-व्यस्त
क्षण पता नही उन तानों का ॥५३॥

रुक कर चरवाहे निरख रहे
हंसों-युत अम्बर की ओभा ।।
ज्यों महा नीलमणि-परदे पर
खग-रूप चली विद्युत-शोभा ।।५४।।

दर्शन कर सके वहाँ अनुपम
भोले चरवाहे निर्मल-मन ।
कर्त्तव्य-निष्ठ सत्प्रेमी को
सन्तों के जैसे प्रिय दर्शन ५५।।

सरिता-तट पर जल पीकर फिर
दल-विचरण में जो रहे मस्त,
ध्वनि से आतंकित मृग भोले
भग चले भभर अब अस्त-व्यस्त ।।५६।।

खग मज्जन-पान-निरत जो थे
फुर-फुर उड़ धरते आसमान ।
वह प्यास बुझा जो बोला, अब—
सरपत ढिग तीतर धावमान ।।५७।।

मिल खेल रहे थे लुका-छिपी
बुलबुल-दल कुछ गझोर तरु पर,
लावा-दल-जैसे वे भी मिल—
उड़ भागे, धरे पुलिन-अम्बर ।।५८।।

जोड़ों मे चकवे जल-विहार
कर नाप रहे रस-ओर-छोर,
चौंके वे भी, तज नीर-सतह
उड़ चले चकित-मन पुलिन-ओर ।।५९।।

जल-पान परेवा जो करके
कर रहा परेई से सलाह
वह भी चौंका, तज भूमि-सतह
क्षण समझ न आयी गगन-राह ।।६०।।

पशु-नर-माया से दूर विहग
जल पर लहरों-सँग लहराते।
जलशायी के शुभ दर्शन कर
आये हों, ऐसा दर्शाते ।।६१।।

ऐसे वे भावुक जल-पक्षी
उड़ चले, संग प्रतिबिम्ब-पाथ,
जा दूर स्रवन्ती-धुंध-बीच
आँखों से ओझल एक साथ ।।६२।।

नभगत रव सुनकर चला भाग
मछरंग घातरत तज शिकार।
कुररी-दल कुर्र कुर्र करता
विचलित पैदल पकड़ा कगार ।।६३।।

कर स्नान काग थे जुटे हुए
रेती पर अपने मेला में।
कुछ ध्यान मग्न थे झुरमुट पर
दिन की उस ढलती वेला में ।।६४।।

नत बाँस-शिखा पर झूल रहे
टहनी पर कुछ पा रहे ठाँव
रेती-ऊपर से मँडरा कर
कर रहे भ्रमित कुछ 'काँव-काँव' ।।६५।।

पूरा मेला वह चौंक पड़ा
आरव पाकर तब अम्बर पर
कुहराम मचाकर रोर—सहित
बायस-दल विचलित इधर-उधर ।।६६।।

हंसों का दल सिर-ऊपर लख
कपटी बायस उड चले भभर;
सद्गुरु के सार-पदों से ज्यों
उर के कुभाव भगते सत्वर ।।६७।।

साधक त्यागी अभ्यास-लीन
कुटिया-बाहर अब रहे टहल,
देखी खग-श्री, पर मोह-रहित
सात्विक निसर्ग-शोभा-विह्वल ।।६८।।

घाती तस्कर सुवर्ण-लोभी—
लख कर ललचायी आँखों से—
पा सके मात्र अन्तर—पीड़ा
नभगत उन सुन्दर पाँखों से ।।६९।।

रस-सिद्ध उदार प्रकृति-प्रेमी
थे टहल रहे निज दल मे जन,
भूले प्रपंच सौन्दर्य निरख
हो भावमग्न ज्यों तज गति-मन ।।७०।।

लोभी पर-श्रम-फल के वनचर
मधुछत्ते पर करके प्रहार,
उभड़ी उन क्रुद्ध मक्खियों के—
कम्बल ओढ़े सह रहे वार ।।७१।।

ऐसे वे प्राणी क्या जानें
कैसी हंसों की सुन्दरता,
पर-पीड़क लोभी की आँखों—
को शुचि सुषमा का कहाँ पता ? ।।७२।।

सूखे तरु पर वह काट रहा—
डाली कर ले टाँगी किरात
ध्वनि पंखों से जा टकराती
कर बार-बार गुरु गगन बात ।।७३।।

देखा उस श्रम-प्रेमी ने रुक
हंसों की छटा निराली थी।
कर्मानन्दी के ऊपर ज्यों—
खग-रूप तुष्टि मतवाली थी ।।७४।।

कायर आखेटक दबक भगे
सुन सिंह-गरज भर वलायास।
जाकर सुदूर मृग भ्रमित मार
दिखलाते खल-बल का प्रयास ।।७५।।

घाती वे लखकर गगन-दृश्य
हो गये तुरत पानी—पानी
अपने जीवन पा पर-पीडक
हंसों के जीवन रस-दानी ।।७६।।

हंसो की झाँकी से प्राणी
पाते सुख-दुख मोहित होते,
उर के गुण - संस्कार-बल से—
जिनके जैसे जीवन - गोते ।।७७।।

आगे वह नदी विदर्भा थी
शुचि शान्तिपूर्ण उसका प्रवाह,
श्री पुर तक जाती सरिता-सी
धर पावन जीवन-दिव्य राह ।।७८।।

पथ-श्रम खोने का कर विचार
तरु पर विहग-दल उतर गया ।
आकर विदर्भ की सीमा में—
पाया ज्यो जीवन-लोक नया ।।७९।।

सरिता के युगल कगारों पर
तरु शान्त खड़े ज्यो ध्यान-मग्न
कुछ सुमन-पल्लवो से शोभित
कुछ वैरागी से अर्द्धनग्न ।।८०।।

नाना पक्षी कलरव करते
अति रंग-विरंग छदो वाले,
मृदु बोली से मन हर लेते
नैसर्गिक गान-पदों वाले ।।८१।।

आते व्यापारी पाल लगा
अति दूर-देश से लिये नाव
उनकी वंशी की तानों से—
खग-दल को भी मिल रहे भाव । ८२।।

संगीतपूर्ण नौका - विहार,
वह युवा-युवतियों का था दल
तरणी के हिलने से कम्पित
प्रतिबिम्ब-रूप कोमल चंचल ।।८३।।

आलिंगन का मृदुभाव सहज—
ऊपर मनगत जो रह जाता
प्रतिबिम्ब-रूप जल-हलकन से—
जल में वह सचमुच बन पाता ।।८४।।

जल भरने का वह समय जान
आकर समीप के गावों से,
भोली ललनायें जल भरती
वेला के भोले भावों से ।।८५।।

गागर की कोमल हलकन से
चलती लहरें इठलाती-सी,
दूरागत वंशी-ध्वनि सुनकर
जल-मस्ती ज्यों बल खाती-सी ।।८६।।

देखा हंसों ने दृश्य दिव्य
श्रम खोकर फिर जलपान किया,
होकर थिर नभ में श्री भरते
कुण्डिनपुर को प्रस्थान किया ।।८७।।

देखा वह राज्य मनोरम था
सद्भाव-भरे सब कार्य-लीन ।
सौन्दर्य-प्रेममय मिले दृश्य
जन-जन प्रसन्न-मन व्यथा-हीन ।।८८।।

वन-उपवन के थे भले दृश्य
खग समुद फुदक कलरव करते
सरसीरुह-सजे सरोवर थे
कलहंस जहाँ निज स्वर भरते ।।८९।।

सब चकित देख इनकी शोभा,
स्वर्णिम हसों का जोड कहाँ ?
तन-मन पर-हित रखने वाले
पावन हसो से होड़ कहाँ ? ।।९०।।

खेतों मे लगे किसान रहे
मन में प्रसन्न, पर देह लस्त,
मन्ध्या-रवि-किरणों पर चढ ज्यों
उड़ते मराल, लख हुए मस्त ।।९१।।

देवी सन्ध्या के कर चढ़ ज्यों
कोमल पंखो को हिला रहे,
श्यामल-पिगल श्री मे तिरते
दिखलाते पर की कला रहे ।।९२।।

जन-मन मे कौतूहल भरते
उड़ चले निरन्तर हंस गगन ।
सर्वत्र सुनहरी जगमग की—
माया न कहीं उनको बन्धन ।।९३।।

वरदा की वह पावन धारा
आगे दिखलायी देती थी,
जिसके तट पर कुण्डिन पुर की—
शोभा मन को हर लेती थी ।।९४।।

नौकायें निज भोली गति से—
करतीं पथिको को आर-पार ।
तरु-वीरुध शान्त निरखते थे
रस-लीन शान्त रस के कगार ।।९५।।

पावन लहरीली धारा थीं
विलसित तमाल, वानीर तीर,
कोकिल - स्वर-धारा से भावित
जिनपर क्रीड़ित खग मत्त कीर ॥९६॥

दल उतर गया तट-तरुवर पर
ज्यों घन पर हंस-रूप झंपा ।
या उपवन शोभित करने को
सुमनों से लसित कनक चम्पा ॥९७॥

पादप से खग उस नगर-कोट—
की शोभा सकुशल निरख सके ।
राजा का महल कनक-सज्जित
मणि-खचित रम्य अति परख सके ॥९८॥

कुन्दन के कलित कँगूरों पर—
सन्ध्या की मिलकर किरण-कला
ऐसी लगती ज्यों नाच रही
घन त्याग सजी जगमग चपला ॥९९॥

ऐसी आभा के ऊपर शुभ—
लहरते केतु स्वाभिमानी,
सौन्दर्यमयी वैभव वाली
नगरी का दर्शाते पानी ॥१००॥

रचना विचित्र अति भाँति-भाँति,
लख दुर्ग-राजि जी में आया,
पादप-शोभित शुचि राज-मार्ग—
से सचमुच स्वर्ग उतर पाया ॥१०१॥

सन्ध्या-श्री-युक्त झरोखो से—
सुन्दरियाँ लखती बगल झाँक,
आरव आहट कुछ समझ-बूझ
रह-रह कर मुँह-पट रही ढाँक ॥१०२॥

चपला-भ्रम से क्षण भ्रमित और—
फिर क्षण मे रमणी-रूप जान,
परियो का नगर उतर आया
हंसों को ऐसा हुआ भान ॥१०३।

छत पर क्रीडारत बालाये—
नव यौवन का मृदु भार लिये,
करती थी हास-विनोद मुदित
तन पर समुचित शृंगार किये । १०४॥

वह प्रमदा उनके बीच खड़ी
संचालन करती क्रीड़ा का ।
सुन्दरता के मृदु भावो मे—
फिर भी संयम था व्रीड़ा का ॥१०५॥

डोरी पतंग की रही खींच
भुजमूल उठा कोमल कर से,
यौवन की मदिरा रही खींच
धीरे-धीरे ज्यों अम्बर से ॥१०६॥

कुच के प्यालों मे भरती-सी
कर-डोर धरे उर तान खडी
भर चुकी नितम्बो के घट मे—
मधु पहले से ही, जान पड़ी ॥१०७॥

मादक चितवन से सुलझ रही
किरणों की सरस पहेली-सी
सुकुमार करों से स्पर्श-लाभ—
कर कनक-रग में खेली-सी ॥१०८॥

वह तो दमयन्ती रही नही
पर उसकी ही वह आली थी
बालाओं के सँग खेल रही
मोहक तन यौवन वाली थी ॥१०९॥

उपवन-वेला अब समझ हृदय
दल उतर गया उन ललियों का।
दमयन्ती के सँग जाने का—
लख समय-विहार आलियों का ॥११०॥

बालक दल में निज खेल रहे
क्रीडा-थल पर थी चहल-पहल।
क्रीड़ोचित वसन पहन क्रीड़ित
तन स्वस्थ, समोद युवक-मंडल ॥१११॥

तीतर-बटेर के युद्ध कही
जन-मन आनन्दित कर देते।
मेषो के द्वन्द - भिड़न्त देख
जन ‘वाह-वाह’ ध्वनि भर लेते ॥११२॥

होती घोड़ों की दौड़ कही
था कही जमा कुश्ती-दंगल।
नाना अभिनय, सगीत कला
नाना वादन, उत्सव मंगल ॥११३॥

नाना प्रकार के कलाकार
कर देते चकित प्रदर्शन से।
जन-जन मे मोद उमड़ता था
कुण्डिनपुर के आकर्षण से ।।११४।।

आपण-रचना अति आकर्षक
चौराहों के समुचित क्रम में।
संकेत - चित्र - रचना ऐसी
पड़ सके नहीं क्रेता भ्रम में ।।११५।।

बजरंगी झण्डा लहराता
सैनिक दल के उद्गारों से।
रह-रह कर गगन गूँज उठता
"जय जय" स्वदेश के नारों से ।।११६।।

राजा का पुण्य प्रताप देख
उतरी-सी दिव्य पुरी अलका।
रमणीय अलौकिक रचना से—
उद्भव होता कौतूहल का ।।११७।।

मन में आकर बसने वाली
उस दिव्य नगर की छटा रही।
मृदुता-सुन्दरता निज समेट
कर रही प्रदर्शन वहाँ मही ।।११८।।

वह दीख पड़ी अब बालाओं—
के साथ राजती दमयन्ती
पथ-श्री में भी रस भरती-सी
चल पड़ी सुभग-तन-कुलवन्ती ।।११९।।

सन्ध्या की मृदु अरुणाई में
अम्बर-तन-यौवन फहरित-सा
गति-साथ मधुरिमा बल खाती,
मन-राग अलक्षित लहरित-सा ॥१२०॥

कोमलतम उर के भावों से—
ज्यों कला-करों की रची हुई
दमयन्ती श्री बगराती भी—
दुगुनी पाती-सी बची हुई ॥१२१॥

मुस्कान-विकीरित भावों से—
सुमनों को नव रसता मिलती।
यौवन के मधुमय भाव देख
निज समय भूल कलियाँ खिलतीं ॥१२२॥

किरणों पर चढ़ ज्यों उतरी हो
चल काम-देश से बालायें।
सुमनों से पथ क्रीड़ा रचतीं
केशों मे गूथी मालाये ॥१२३॥

सन्ध्या—श्री में मन्थर गति से—
प्रमुदित प्रमदाओं का विहार,
मुस्कानों से रवि-किरण-कला
रुककर करती अपना सँभार ॥१२४॥

सन्ध्या के शोभा-सागर मे—
आली सुकुमार लहरियों-सी -
घन-इन्द्रधनुष में रंजित शुचि—
वसनों से शोभित परियों-सी ॥१२५॥

चलती, सुगन्ध सेवन करतीं,
मादक कोयल के मधुर गान,
सुनती जाती अलि-वीणा-ध्वनि
स्वर-मुग्ध शिखी की मधुर तान ॥१२६॥

पहुँची जब उपवन बीच सभी
तब हंस उड़े शुभ समय जान
पादप पर उतरे धीरे-से
हो सका न उनको तनिक भान ॥१२७॥

दमयन्ती-हंस-संवाद सर्ग

देखा मराल-दल ने तरु से
मधुमास छटा थी उपवन में।
गुजन मृदु चंचरीक करते
सखियों के स्वागत-गायन में ।।१।।

पट फहरित रंग-विरगे लख—
तितली-दल भरता चञ्चलता,
मानो विकसित बहुरंग सुमन
उड-उड़ पड़ते तज प्रेम-लता ।।२।।

नव विकसित तन पर वसन-रंग—
की समता पंख न कर पाते,
तब मीठी बोली बोल मोर
डालों पर सकुच सिहर जाते ।।३।।

कम्पित-सा परस समीर हुआ,
मुस्कान-सहित वे खिलती-सी
उर पर अम्बर की खिसकन लख
पल्लव-ढिग कलियाँ हिलती-सी ।।४।।

कर चपल तनिक परिधान पवन
गुदगुदी उठाता कलियो मे ।
मधु की माया में बेसुध उर
उद्गार उमड़ता अलियो में ।।५।।

मादक विनोद की मृदु बोली
रस-भरी न सब तक जा पाती,
मानो वह केन्द्रीभूत हुई
श्यामा के स्वर में आ जाती ॥६॥

मृदु हास विकसते सुमनों को—
मधुसार दिखाता जीवन का।
अँग-चालन में गति-सँग मादक
श्रृंगार उमड़ता यौवन का ॥७॥

कर में चोटी हो अधरों तक
स्पर्शासनवश यदि आ पाती,
अलिमालाओं से पंकज-श्री—
मिलने का हाव सिखा जाती ॥८॥

वह चाल मधुर मतवाली लख
यों भाव सहज मन जग जाता,
गज-मद ज्यों लज्जित होकर हो
कनपटी-राह धर भग जाता ॥९॥

आगे वह दिव्य सरोवर था
शोभित सुमनों की माया में।
तट पर बालायें खड़ी हुईं
कुसुमित तरुवर की छाया में ॥१०॥

सुर - बालायें ज्यों कल्पवृक्ष—
के नीचे पहुँची लसित रूप,
वय-सुलभ चपलता कल विनोद,
आमोद-कला अद्भुत अनूप ॥११॥

मुख निरख मनोहर कंज सकुच
दिन-अन्त समय हो मन्द रहे।
नयनों की रचना निरख भ्रमर
लज्जित उनमें हो बन्द रहे ॥१२॥

कोमल लहरें बल खाती थीं
अनुकृति में कल कौतूहल की,
होती विलीन जा पुलिन-पास
समता में जब पाती हलकी ॥१३॥

नयनों में मोहक बाँकपना
उतराकर मीन निरख पाते।
पर मेल मिलाना सहज नहीं
लज्जावश जल-अन्दर जाते ॥१४॥

सर-जल पर लहरित कल मराल
लज्जित तज निज बोली सुन्दर।
लघु जान मधुरिमा पद-गति की
उड़कर पहुँचे तरु-उच्च शिखर ॥१५॥

ऐसी वह बाला दमयन्ती
सखियों-सँग शोभा सरसाती,
सरसी-तट पर कुछ समय रुकी
उपवन-श्री में मन बहलाती ॥१६॥

वह समय जानकर देव-हंस
आये नीचे उड़ तज तरुवर;
आया अनेक बन हंस-रूप
जैसे स्वर्णिम जीवन--अवसर ॥१७॥

चौकी सखियाँ कौतूहल से,
"क्या सन्ध्या ही साकार हुई,
पंखों की पिगल रचना में
जिज्ञासा को आधार हुई?" ॥१८॥

आकर भूपर फिर छितराकर
चल पडें हंस-पग विविध ओर ।
अति निकट प्रदर्शन से अपने
भर दी मन मे मोहक मरोर ॥१९॥

हंसों के पीछे अलग-अलग,
सखियाँ सब होकर धावमान
चल पड़ी समुद कौतूहल से,
शुचि स्वर्ण छदो के विहग जान ॥२०॥

वाणी-बाहन शुभ धरती ज्यों
रति कामरूपसी विविध रूप,
सम्बन्धी विहग रमा के भी
लगते ज्यो कुन्दनमय अनूप ॥२१॥

या समझ गयी हों, चपला ही
घनश्याम-पार्श्व तज भागी हो,
मधुऋतु में निर्भय विहग - रूप
जगमग उपवन मे जागी हो ॥२२॥

दमयन्ती के आगे होकर
पग—धावित हंस विशेष चला ।
वह दृश्य देखकर उपवन मे—
पिक के मुख फिर नव स्वर निकला ।२३॥

स्वर की मादकता बार-बार
सुन्दर लक्षण बतलाती थी।
तन-वाम-अंग की मृदु फड़कन
अति योग्य समर्थन पाती थी ॥२४॥

रुक गया कुंज की आड़ पहुँच
खग करता शिथिल प्रदर्शन-सा
लपकी जब ग्रहण-हेतु बाला
तब हुआ सुमन-मधु-वर्षण-सा ।२५॥

दमयन्ती के कोमल कर खग
होकर ग्रहीत यों जान पड़ा
क्षणछवि-मृणालयुत पंकज पर—
वाणी का वाहन आन पड़ा ॥२६॥

बोला खग मानव बोली में
"बाले, तेरा शुभ मंगल हो,
अनुपम यौवन सुन्दरता के—
अनुरूप सहायक का बल हो ॥२७॥

तेरे समान ही सहृदय नर—
को तेरे उर का प्यार मिले।
सौन्दर्य प्रेम के पावन पथ—
से जीवन का शुभ सार मिले ॥२८॥

तुझको अनन्य वह प्रेम मिले
जिसमें आशा की रेखा हो,
जो कभी न मिटने-वाली हो
चाहे जो जीवन-लेखा हो ॥२९॥

श्रद्धामय तेरे अन्तर को—
विश्वासपूर्ण आधार मिले,
जिसमे शिवता का भाव रहे
ऐसे पति का शृंगार मिले ॥३०॥

शंका तुझको होती होगी
असफल न कहीं यह यौवन हो,
अभिलषित राग की राह भूल
निस्सार न अपना जीवन हो ॥३१॥

तन-मन की समता मिल न सकी
तो क्या फिर यौवन होने से,
ऐसी चिन्ता उठती होगी
रह-रह अन्तर के कोने से ॥३२॥

तेरी यह चिन्ता हरने को
अति दूर देश से आया हूँ।
पाकर तू जिसे निहाल रहे
सन्देश उसी का लाया हूँ ॥३३॥

चौंकी दमयन्ती सुनकर यह
कोमल तन उसका सिहर उठा।
आनन्दपूर्ण उर - कम्पन पा
धीरे से अञ्चल फहर उठा ॥३४॥

उमड़े यौवन-घन मे आशा
चपला-डोरी-सी चमक उठी।
प्रिय बन्धन का संकेत लिये
मानस में आकर दमक उठी ॥३५॥

कुछ लाज भरी नत चितवन से
देखा दमयन्ती ने मराल।
'कितना सुन्दर खग, मृदुभाषी
देता जादू के भाव डाल ॥३६॥

उपकार-भरी बोली इसकी,
पर-हित शुचि श्रम करने वाला।
आकर्षण है ज्यों मूर्तिमान,
सद्गुरु-सम श्रम हरने वाला ॥३७॥

आया पछी यह जान-बूझ
मेरे हाथों कर शिथिल देह।
मन में दमयन्ती सोच रही,
जानूँ, कैसा सन्देश-स्नेह ॥३८॥

बोली बाला, "शतवार धन्य
खग, अपना दे पावन परिचय।
तेरे प्रयास के पथ पर हो—
क्या चल देगा मेरा निश्चय ? ॥३९॥

सब भाँति सुघर-तन, मृदुभाषी
उपकार भाव का विहग-गत।
उपवन में आ तू प्रकट हुआ
निखरा तव श्री पाकर वसन्त। ४०॥

तेरा मंगलमय मिलन देख
मतवाली कोयल बोल रही
मंगल दर्शाने मृग-माला
देखो वह सम्मुख डोल रही ॥४१॥

विकसित सुमनों का यह मेला
सूचित करता, मंगल होगा।
फलयुत नत डाली बतलाती—
तेरा यह मिलन सफल होगा ॥४२॥

भोली कलिकायें तत्पर हैं
खिल भरने को कोरक कोना,
भौरों के गुन-गुन गायन में—
क्या परामर्श, बतला देना ॥४३॥

प्रतिनिधि तू सभी मंगलों का,
तू मूर्त्तिमान स्वर्णिम अवसर।
सद्गुरु की तेरी महिमा है
आशा-विश्वास पूर्ण तव स्वर।४४॥

अपने मन की अब बात सुना
निर्भय होकर हे, विहग-देव !
किसका ले प्रिय सन्देश चला
अम्बर-गामी, कह सकल भेव" ॥४५॥

फूलों की रागमयी शोभा
लसती उसके मुखमंडल पर।
बोली में कोमलता विचार
अलिदल भी हुआ शान्त सत्वर ॥४६॥

सुनने को उत्सुक दमयन्ती,
पावन प्रिय वह सन्देश कौन,
श्यामा-ध्वनि-गुंजित उपवन भी—
क्षण श्रवण-हेतु ज्यों हुआ मौन ॥४७॥

मोहक नूपुर-रव शान्त हुआ
यह जान पत्र-दल भी अलोल।
नीरवता की छवि-छाया में—
वह देव-हंस फिर पड़ा बोल ॥४८॥

छवि-श्री-सम्पन्न कला - पूरित
वह निषध देश की है धरनी,
ऊषा-सन्ध्या सजकर जिसमें
नैसर्गिक सुन्दरता भरनी ॥४९॥

शृंगार वहाँ साकार प्रकट
कल्पित जो कविजन-भावों में।
करने को दिव्य नगर-दर्शन
उतरा दिव उसके गावों में ॥५०॥

रवि ज्ञान-कला, शशि प्रेम-कला --
उस धरती पर बगरा जाता।
भरकर शुचि कर्म-कला अपनी
नित अग्निदेव भी कल गाता ॥५१॥

उसका पालक नृप वीरसेन
निज नाम धन्य करने आता,
पत्नी जिसकी शुभ रूपवती
जो रूपवती प्रिय-प्रेम-कला ॥५२॥

जिनके सुपुत्र अब राजा नल
बल रूप सहज मोहन वाला;
अनुपम सुन्दर तन प्रेम-रूप,
मधुमास सदृश जीवन वाला ॥५३॥

विकसित अगों की सुन्दरता
उमड़ी-सी जीवन-ढार लिये
ऐसा साथी वह खोज रही
जो मिले प्रेम का सार लिये ।।५४।।

जिसकी चर्चा युवती-समाज—
में चलकर काम जगा देती ।
सपनों में भी वह रूप धार
मनमोहक पाठ पढा लेती ।।५५।।

मानवता पढती शान्ति-पाठ
जिसके चरित्र की छाया मे ।
जनता की सेवा योग बनी
जिसके जीवन की माया में ।।५६।।

उस राजा नल के शासन में—
धरती पर शान्ति कला भरती ।
जैसे नभ में राकेश-जनित
चन्द्रिका विलस नर्त्तन करती ।।५७।।

साहस बल जन-प्रिय जीवन के—
अति आकर्षक वर युग कगार,
नरपाल प्रवाहित करता नित
जिसमें करुणा की दिव्य धार ।।५८।।

टंकार धनुष की जिसके सुन
घन गगन भीत कम्पित होता,
निज प्रिया चौंकती चपला पर
तब दया-हेतु इगित करता ।।५९।।

जिसके यौवन से भावित हो
प्रातः उपवन कलियाँ खिलतीं
दिव से धर रूप तितलियों का—
परियाँ आ नयन सफल करतीं ।।६०।।

जिसके शरीर का रूप लिये
सौन्दर्य स्वयं साकार हुआ,
जैसे भूले भटके वसन्त—
को वही सहज आधार हुआ ।।६१।।

श्यामा जो उसमें रस भर दे
निज प्रेम-पूर्ण मादक स्वर से,
ऐसी है कौन, प्रश्न उठता
उदित जो करे नये सिर से ।।६२।।

यह प्रश्न मात्र सुलझाने को
तेरे समीप मैं आया हूँ।
तेरा निश्चय बस पाने को—
सन्देश उसी का लाया हूँ ।।६३।।

दूती से पाया है पहले
उसने तेरा नव चित्र सुघर,
मन की तव शुचि कोमलता सुन
छवि अंकित वह राजा के उर ।।६४।।

बाले, मैं गगन-विहारी खग
होता विहार ऊपर अपना
भूले को राह बताने को—
होता नीचे आना—जाना ।।६५।।

शंका न कहीं मेरे ऊपर
तेरे अन्तर में घर कर ले,
मैं सत्य शपथयुत कहता हूँ
यह निश्चय अपने उर धर ले ।।६६।।

यदि हुआ न प्रियवर नल तेरा
तब यौवन - श्री निज व्यर्थ जान,
विधि-कला सोच चिन्तित होगी
अपना विरचित असफल विधान ।।६७।।

सुन्दरता में शिवता रखकर
वह सत्य-मार्ग चलने वाला,
नल छोड़ और नरपाल कौन
उर जीवन-रस भरने वाला ? ।।६८।।

जैसी हो तेरी चाह स्वय
वैसी मुझसे बतला देना ।
मेरा उपदेश मनन कर तब
जैसी इच्छा वैसी करना" ।।६९।।

यह कहकर पछी शान्त हुआ
सन्नाटे में उस उपवन के,
जैसे जिज्ञासु बने सब चुप,
क्या थे विचार बाला-मन के ।।७०।।

विश्वास लिये उर दमयन्ती
भावो में सकुची सिहर पड़ी ।
मन का पाकर निज दाँव सफल
भोली सस्मित क्षण रही खड़ी ।।७१ ।

उसके पावन मन-मन्दिर में—
वाणी जैसे चुप-चाप हली
आशा की प्रेम-प्रेरणा से
मृदु भाव लिये बाहर निकली ।।७२।।

बोली बाला सकुचाती-सी
"खग, कथन तुम्हारे योग्य रहा
तेरे जैसे पथ-दर्शक गुरु—
से भ्रम की होती आग कहाँ ? ।।७३।।

खगदेव, तुम्हारे यत्नों का—
स्वागत होगा मम अन्तर से ।
सन्देश सहज सम्बल होगा
सुन पाया जो तेरे स्वर से ।।७४।।

नृप ने जो भाव बसाया है
उर के आशामय आसन पर,
स्वयमेव सहज ज्योतित होगा
कर अमर स्नेह-दीपक लेकर ।।७५।।

दूती लायी वह चित्र यहाँ
नृप का, तब देखा मैंने भी
मेरी माँ ने घर लिया निरख
सखियों ने देखा उसे सभी ।।७६।।

वाणी न कहीं कुछ कह पायी,
शोभा की रचना उस तन की
अन्दर आकर फिर मिट न सकी,
ऐसी रेखा अपने मन की ।।७७।।

आशा की भोली दूती ने
अपने मन का उपकार किया।
मोहक प्रवाह में बह न चलूँ,
रुकने को रूपाधार दिया ॥७८॥

निश्चय अपने मन-मन्दिर में—
श्रद्धा के विरचित आसन पर—
पूजा होगी उस राजा की
जगमग विश्वास-दीप लेकर ॥७९॥

उन चरणों पर अर्पित होंगे
जितने हैं अपने भाव-सुमन।
सर्वस्व समर्पित उनको कर
निर्भय होगा अपना जीवन ॥८०॥

पथ-दर्शक गुरु, हे, विहग देव !
इसमें न तनिक सन्देह कहीं
उपदेश तुम्हारा मिटने पर
रुकने वाली यह देह नहीं ॥८१॥

अपराध क्षमा करना इतना
हे विहग-राज, इस भोली का।
मैं मूल्य चुका न कभी सकती
तेरी अमूल्य इस बोली का ?" ॥८२॥

कर दिया मुक्त दमयन्ती ने
अपनी कोमल तन्मयता से।
आशा-तरणी का नाविक जो
सुधिपाल बना जो ममता से ।८३॥

अपनी सेवा-विह्वलता में—
खग भाव-मग्न कुछ सोच रहा
भावो की कैसी कोमलता,
सुन्दरता का तन सार, अहा ! ॥८४॥

यौवन की क्रीडा में व्रीडा—
का कैसा सुन्दर भाव मिला।
कोमलता स्मिति में खिलती-सी
मन में शुचि प्रेम-विचार पला ॥८५॥

उर-शालीनता सहज ऐसी
तन के साँचे मे ढली हुई
सब छविमानों की श्री ले ज्यो
अपने यौवन में खिली हुई ॥८६॥

सब अग मनोहर अपने मे—
सकेत कहीं कुछ करते-से
आँखों की भूख मिटाने को
कुछ मौन रूप दम भरते-से ॥८७॥

बोला बिहग, "शतबार धन्य।
पथ दूर पहुँचना है वाले !
उड़ नगर-दूर इस रात आज
पथ-वन में हम रुकने वाले" ॥८८॥

उस समय हाँपती सखियाँ भी
स्वेदिल तन का व्यापार लिये
असफल प्रयास कर आ पहुँची
कंपित उरोज-गुरुभार लिये ॥८९॥

संकेत किया दमयन्ती ने
"यह हंस-रूप शुभ गुरु मेरा
जिसके कारण इस उपवन में—
स्वर्णिम पर-हंसों का फेरा" ।९०॥

चौकी बालायें नमन-सहित
बोला खग, "सबको धन्यवाद ।
आशानुसार सन्तोष हुआ
जो मिला मुझे यह साधुवाद" ॥९१॥

परिहासा प्रमुदित मन वाली—
आली बोली अवसर पाकर
"यौवन-गुरुता मम जीजी की
गुरुवर, कर दे प्रियवर-पथ पर" ॥९२॥

झेंपी दमयन्ती मोद-सहित
नतमुख विहंसी ज्यों वासन्ती,
या यौवन-घन-चपला विहँसी
अधरान्तराल रस-ज्योतिवती ॥९३॥

आलीगण की मुस्कान मधुर
मुख-पंकज-दल से यों निकली,
नव राग-विभा सस्मित हो ज्यों
खिलती कलियों में लगी भली । ९४॥

बोली परिहासा, "विहग देव !
किस दिव्य देश से आये हो ?
मेरी आली के लिये देव,
सन्देश कौन-सा लाये हो ?"९५॥

दमयन्ती ने संकेत किया
"सखियाँ सब मेरी अन्तरंग,
कौतूहल इनका शान्त करें
मेरा ही इनको समझ अंग" ॥९६॥

दमयन्ती का रुख लख उसने
कौशल से शुभ संकेत किया
उस निषध-राज्य का शुभ परिचय
राजा के प्रेम-समेत दिया ॥९७॥

क्षण भर वे समझ निहाल हुईं
राजा की प्रेम-भरी गति पर।
ममतावश विह्वल सोच पड़ीं
जब आली की मानस-रति पर ॥९८॥

अपने प्रयास पर सोच तनिक
दौड़ी उनपर मोहक रेखा,
हंसों का पीछा करने में—
सखियों ने जब असफल देखा ॥९९॥

निज-निज पथ-धावित हंसों से
आशा विचार सब पड़ीं सिहर।
उनके उर कसक मरोर उठी
खग चले गये पीड़ा देकर ॥१००॥

"दमयन्ती का पा यत्न पूर्ण
खग भाग्यरूप सन्देश दिया
हतयत्ना हम सब बीच रुकीं,
उर व्यर्थ खगों से द्वेष लिया" ॥१०१॥

फिर भी आली का फल विचार
सखियाँ सब प्रमुदित मृगनयनी—
राजा नल का सम्बन्ध समझ
भूली मोहक पीड़ा अपनी ।।१०२।।

गुरु हंसराज ने सखियों पर
मृदु वाणी का जादू डाला।
तब राजकुमारी ने दे दी
उसको उतार मोती-माला ।।१०३।।

परिहासी अन्तरग आली
"बोली" यह माला सहिदानी,
धारण नृप इसको हृदय करे
जीजी का बन अन्तर-ध्यानी ।।१०४।।

अभिलाषा शुभ पूरी होगी
उनकी खगराज, स्वयवर में।
आना न यहाँ वे भूल सकें,
सुधि देगी यह माला उर मे ।।१०५।।

दमयन्ती चुप उस समय हुई
स्वीकार-भावना मन लेकर।
"आली ने मन की बात कही,
क्या होगा कुछ उत्तर देकर" ।।१०६।।

कुछ झेंप बाहरी झलकी, पर
मुस्कान मधुर मुख पर छायी,
पंकज-श्री पर मृदु हास लिये
ज्यो प्रात उषा-लाली आयी ।।१०७।।

देखा उसने तब सखियों को—
सकुची भ्रमरी-सी आँखों से;
क्षण भर ढँकने का याम किया
बरुनी की झीनी पाँखों से ॥१०८॥

परदा का था वह भाव नहीं
वह झेप सरस मतवाली थी,
यौवन—श्री जिसमे झांक पड़ी
लज्जा वह एक निराली थी ॥१०९॥

स्वीकार हृदय का होता है
जिसकी शीतल मृदु छाया में,
लाली मुख की शोभा पाती
आशा की अपनी माया में ॥११०॥

गदगद भावों से भावित हो
पंखों का कुछ आसन डोला।
स्वीकार मौन मन पा विहग
अवसर विचार कर फिर बोला ॥१११॥

"सहिदानी तो नृप के कर जा
अर्पित होगी सबसे पहले।
इस समय यहाँ वैदर्भी को
कुछ कहना हो अब से कहले" ॥११२॥

"खग, कहने को मैं योग्य कहाँ'
बोली दमयन्ती धीरे-से
नय-धारा में स्वीकृति-नौका
विलसी मृदु ध्वनि-लहरो पर से ।।११३।।

रुक राजकुमारी फिर बोली,
"समुचित सुपास इस उपवन मे ।
निशि में खग-देव ! यही रह लें
यह बात रुची मेरे मन मे" ।।११४।।

बोला खग, "बाले, सोच न कर
निर्भय पथ मेरा है अम्बर ।
वन-पथ में आज विदर्भा-तट
होगा निवास निशि तरुवर पर ।।११५।।

कल-कल-ध्वनि-भावित पुलिनों पर
पुलकित तरु फल-फूलों वाले,
दूरागत-विहग-वास बनते
नित नैश गगन की छाया ले ।।११६।।

चन्द्रिका खेलती लहरों से
सुन कानो से कोमल निस्वन
गुदगुदी उठा बगराती श्री
तरु-पत्रों में भी भर सिहरन ।।११७।।

चल कर हम वहीं वास लेंगे
रजनी का सहज निखार वहाँ
सत्संग देव-पक्षी करते
पाने को जीवन-सार जहाँ ॥११८॥

बालाओ, सब मिल घर जाओ
रजनी का अब आगमन जान,
शोभा कर-कलिता चली गयी
अम्बर-गोदी से किये मान ॥११९॥

नयनों का जादू बन्द हुआ
किरणों की मोहक लाली से,
सन्ध्या की शोभा देख उड़े
देखो, विहंग तरु-डाली से ॥१२०॥

देखो, वे गगन-विहारी द्विज
मस्ती का मँडराना तजकर,
वन-सरिता के उस छोर सभी
जा पहुँचे जहाँ पुलिन-अम्बर ॥१२१॥

प्राची से तम का आना लख
सन्ध्या मन में भयभीत हुई
वह शीलवती तज क्षितिज-छोर
लाली समेट कर चली गई ॥१२२॥

दिन का कर अन्तिम प्रेम-मिलन
चकवे को कर निज इसी पार,
चकवी स्वभाव-वश जा पहुँची
पीड़ा दे-लेकर उस कगार ॥१२३॥

भोली भ्रमरी जो राग-पगी
मन भूल गयी तम का आना
फँस गयो विवश हो जलज-क्रोड
अब भूल चुकी 'गुन-गुन' गाना ॥१२४॥

बन-पशु-लीला से भीत, वृषभ—
की ध्वनि से तोषित सुरभी-दल—
ले गाँव-पास गोपाल चले
धावित सँग ढुनमुन वत्स चपल ॥१२५॥

निशि-लीला-दर्शी तारे भी
धीरे-धीरे अब झाँक रहे
शशि-गोदी से चन्द्रिका निकल
कब नाचेगी,—क्षण आँक रहे ॥१२६॥

जल-क्रीड़ा कर निज गागर भर
ललनायें कर अति सर उदास,
अब समय जान सब जा पहुँची
बालाओ, देखो गाँव-पास ॥१२७॥

जल पीकर, सुनकर भूँक हरिण
देखो कगार से दूर भगे,
अब दूरी पर धुँधले लगते
झुरमुट-झाड़ों के पास लगे ॥१२८॥

रुकने का अब है समय नहीं
आशीष मिले सबको मेरी।
चलता हूँ मैं, तुम भी जाओ
निशि-माया अब देगी फेरी" ॥१२९॥

चल दिया हंस फिर ऊपर उड़,
बालायें नीचे नमित-भाव।
श्रद्धा की जीवन-क्रीड़ा में—
ज्यो छोड़ चला विश्वास-दाँव ॥१३०॥

ऊपर हंसों का फिर संगम
सखियों ने अम्बर में देखा।
मोहक मरोर की माया में—
तब मचल पड़ी अन्तर-रेखा ॥१३१।

इस भाँति समा के साथ हुआ
नभ-पथ से हंसों का प्रयाण,
आहत सुन्दरियों को कर ज्यों
लोपित अनंग के सुमन-वाण ॥१३२॥

दमयन्ती सखियों को सँग ले
उर-कसक लिये धर चली राह।
करने को निज साकार भाव
मन के परदे पर जगी चाह ॥१३३॥

नल-चिन्तन सर्ग

(१)
दिन भर नल डूबा चिन्तन में, निशि-वेला में सो न सका ।
तम की माया में आशा का, जलता रहा दीप उसका ।।
भावों के मोहक पतंग सब, उस लौ में पड़ मर न सके ।
संजीवन-सी एक सूचना, पाने को थे तलफ रुके ।।
(२)
कहूँ-कहूँ कर नगर-कोट से, अरुण-चूड़ अब बाँग दिया ।
क्रीड़ारत लज्जित शशि पश्चिम, झुरमुट में मुँह ढाँक लिया ।।
'ठाकुर जी, ठाकुर जी' सुनकर, भक्त भुजंगा की बानी ।
तारे ठग छिप रहे भाव लख, अम्बर में होकर पानी ।।
(३)
धीरे-धीरे रही झाँक अब, प्राची-पथ से उजियाली ।
पीछे ऊषा आने वाली, दर्शाने मुख की लाली ।।
आज अभी जग कोयल तरु पर, मंगलमय स्वर में बोली ।
आशा की कोमल डाली पर, भाव-सुमन ज्यों पा डोली ।।
(४)
वन्दीजन गा रहे प्रभाती, समझ जागरण की वेला ।
नींद कहाँ नृप-नयन-द्वार पर, पलक-कपाट-मुक्त डेला ।।
पर तारों ने केवल पग कर, अन्तर-चिन्तन में देखा ।
एक चित्र सज्जित पाने को, जोड़ रहे जीवन-रेखा ।।

(५)

जाना नृप ने धीरे-धीरे, नीडो में खग जाग रहे।
रजनी के मोहक प्रयाण पर, कहाँ-कहाँ कर काग रहे॥
'उठो गुटुरगू' मीठी ध्वनि से, जाग परेई भी बोली।
उसके प्यारे ने भावित हो, प्रेम-सहित आँखें खोली॥

(६)

नित्य-क्रिया से मुक्त भूप ने, देखा जब बाहर होकर
सम्मुख था वह शकुन विहरता, खगी-संग तरु-चोटी पर॥
प्रिया-पंख-छाया में होकर, उषा-ओर नत-माथ हुआ।
दिव्य लालिमा-हित शुभ वन्दन, शकुन भूप का साथ हुआ॥

(७)

वह मधुमय मधूक-तरु आगे, आज, और ही गमक रहा।
देखा नग्न डालियो से मधु, मदिर भाव से टपक रहा॥
वार-बार कलरव कर पक्षी, रस-लोभी हो निकट रहे।
खस पड़ते, पर कुछ रस-पूरित, फल अकुर से लिपट रहे॥

(८)

राजा फिर पहुँचा उपवन में, लक्षण हृदय विचार रहा।
वासन्ती की छटा छबीली, सुमनों का व्यापार, अहा!॥
मधुग्राही भ्रमरो का आना, आज और ही लगता था।
तितली की सतरगी साडी, देख भाव नव जगता था॥

(९)

प्राची की वह माँग विभूषित, सिन्दूरी वह लाली थी।
विहग-पंक्ति मोती-माला-सी, देती छटा निराली थी॥
नीचे वह सुहाग-विन्दी-सा, रवि का मंडल झलक चला।
मंगल मंत्र-रूप कोयल का, फिर मृदु पंचम स्वर निकला॥

(१०)

पुष्पित पादप के शिखाग्र से, चलता कलरव खग-वन्दन ।
मिलकर देवी का करते ज्यों, प्रेम-भाव से अभिनन्दन ।।
सबकी मन्नत समय समझ कर, मानो नृप-हित होती थी ।
प्रकृति सहज संकेतों से निज, आशा को पथ देती थी ।।

(११)

माधविका के उसी कुंज में, राजा जाकर बैठ गया ।
मन की अति खींचातानी में, ज्वर-विकार-सा ऐंठ गया ।।
अगर न आया उत्तर मन का, लाज गवाँ मरना होगा ।
लेकर ऐसी प्रेम-विवशता, किस जग मे रहना होगा ? ।।

(१२)

अन्तर से निश्चय-रेखायें, चलकर चित्र बनाती थी ।
भीतर बसी अदृष्ट-तूलिका आभासित कर जाती थी ।।
बाहर ममता चित्र खोजती, इधर-उधर डगराती-सी ।
सहयोगी साधन पर होकर, कल्पित रँग भर पाती-सी ।।

(१३)

हंसों के आगमन-भाव से, अन्य भाव हो लुप्त रहे ।
आशा की मृदु शय्या पर हो, दिवा-स्वप्न दे सुप्त रहे ।।
देखा नृप ने किरणें आयीं, अरुण-राग-सी बगराती ।
चित्रित करता था मन उनपर—चढ़ी हंस-माला आती ।।

(१४)

प्रेम-कथा कहने को नभ में, तत्पर होते यदि स्वर से ।
पर-दोलन से हमें बुलाते, तो उड़ता अन्तर-पर से ।।
यदि मराल किरणों से आते, मति पा सहज कामिनी की ।
जीवन अपना धन्य समझता, सुधि पा हंस-गामिनी की ।।

(१५)

अभिमत समाचार सुनने पर, कोकिल-स्वर पूजित होगा ।
दक्षिण की इस मृग-माला में, नयनों का इंगित होगा ।।
भाव परेई का मिल जाता, कोमल कंपित पाँखों से ।
चाष प्रकट मंगल दे जाता, रूप-क्षुधा की आँखों में ।।

(१६)

दिव्य रूपधारी प्यारा खग, क्या बाला से मिल न सका ?
या उसके मन रूप बसा है, अन्य किसी प्रेमी जन का ?
या अम्बर में और राह धर, अन्य देश खग भटक चले ?
गगन! बता उनपर क्या बीती, किधर कहाँ किस पथ निकले ?

(१७)

दूरागत-तृणग्राही हारिल, आ तरु पर विलसित होते ।
चंगुल-मुक्त हंस प्यारे तुम, उलझ कहाँ हो क्या करते ?
उड़ने ही वाले धीरज को, कौन रोक देगा संबल ?"
कुंज-द्वार पर नल प्रलाप कर, नभ-पथ-दर्शी बना विकल ?

(१८)

"बाल दिवाकर की कल छवि ने, जिन पंखों को रंग दिया,
भाव-तूलिका अपने कर ले, ज्यों शुभ रूप अनंग दिया ।
क्यो मराल वे चढ़ किरणों पर, अब तक यहाँ न आ पहुँचे ?
हा ! पड़कर किस मोह-जाल में, कहाँ भटकते जा पहुँचे ? ।।

(१९)

अम्बर-पथ से कितने पक्षी, आते-जाते दीख रहे ।
प्यारे हंस कहाँ जा भूले, समाचार यह कौन कहे ?
किससे पूछूँ अपने मन की, कौन व्यथा हरने वाला ?
कौन पहेली मेरे मन की, आकर हल करने वाला" ।।

(२०)

मन-कल्पित चिन्तन में भूला, अपने तन की सुधि प्यारी।
अर्द्ध नींद-वश, आँख बन्द फिर, धूमिल चिन्तायें सारी ॥
लरक पड़ा तन कुज-सहारे, स्वाभिमान का ध्यान कहाँ ?
चिन्तन-भरी प्रतीक्षा सोयी, मानस का आगार जहाँ ॥

(२१)

मन की लिये सुनहली आशा, जगमगजग खग-दल आया।
राजा को आभास कहाँ था, किस थल कहाँ कौन भाया ?
हंसराज ने देखा नृप को, जाग उठी सकरुण माया।
नर की कैसी गति हो जाती, छूने पर तृष्णा-छाया ?

(२२)

क्षण कुछ भूला मोह-जाल नृप, निद्रा के कल अञ्चल में।
कितना मोहक रूप सामने, पर मन नहीं लोक-थल में ॥
करारुढ़ सन्देश लिये प्रिय, आता-सा खग-रुप कहाँ ?
सर्व भूल कर मन जा पहुँचा, रूप-मुक्ति का द्वार जहाँ ॥

(२३)

मंजरियों से मिल आती जो, कोकिल-ध्वनि उर शान्त हुई।
मंगल सूचक चित्रावलियाँ, अब अन्तर में भ्रान्त हुई ॥
क्या जाने नल, अम्बर-बन से कनक-सुमन खग-दल आया।
आरव-हीन उतर धीरे से, काम-धनुष लज्जित पाया ॥

(२४)

'गुन-गुन' कर गुणगान मधुप जो, सरसी से आनेवाला।
श्रवण-समीप पहुँच राजा के, उसमें मादक स्वर डाला ॥
कहता-सा शुभ समाचार नव, मधुमय नीरज-बदनी का।
उठ रे नृप, लख पंकज-बेला, भाव कहाँ अब रजनी का ॥

(२५)

शरणदायिनी नीद निराशा, खोकर ही अब भंग हुई।
आशा प्रिय विश्वास गले लग, यहाँ और ही रंग हुई॥
देख दृश्य सम्मुख का नल अब, जीवन से निज धन्य हुआ।
हंसराज को गले लगाकर, अन्तर-भाव-अनन्य हुआ।

(२६)

स्वस्थ हुए दोनों स्वभावबश, भूप-हंस की बात चली।
रागारुण मानस में प्रातः, अभिलाषा की कली खिली॥
"राजन, मंगल से बढ़ मंगल, का हमको कल दृश्य मिला।
दोनो छोरो से समान ही, मानस का प्रिय प्रेम चला॥

(२७)

वीणा सुमनों की उपवन मे, सजी करो के तारों से।
सधे हुए स्वर सहज निकलते, मधुर मधुप गुंजारो से॥
नर्त्तन-सजी तितलियो का मृदु, श्यामा का मोहक गायन,
नृपवर! सुनने का यह अवसर, क्यो उदास अब तेरा मन ?॥

(२८)

जिसकी छवि मधुमय वसन्त को, लज्जित कर देने वाली।
उसके ही नाते से पाती, मधुऋतु ज्यो मादक लाली॥
सुमन विकस लज्जित हो जाते, निरख सहज वह सुन्दरता।
छविमानों में निज छवि से वह, भरती जैसे मोहकता॥

(२९)

विकसित सुमन समझ अलिमाला, वदन-समीप पहुंच जाती।
पास पहुँच उस केश-राशि के, अपने को लज्जित पाती॥
हटते अलि, पीछे मुड़ सुनती, उनका स्वर जादू वाला।
पाने को सन्देश तुम्हारा, उत्सुक होती वह बाला॥

(३०)

तेरी ही मुस्कान सहज वह, ऊषा में प्रतिदिन पाती।
उपवन में उदीचि-नभ-पथ धर, आगत खग-दल से कहती ॥
"क्या है कुछ सन्देश बता दो, गगन-विहारी प्रियतम का"।
ऐसी उसकी विह्वलता में, चित्र निखरता उपवन का ॥

(३१)

सरवर की कोमल लहरों में पाती प्रेममयी कम्पन।
मीन-कला में नयन-कला नव, पाकर हो जाती उन्मन ॥
लखती, भ्रमरी जब पा जाती, कंज-क्रोड़ में मृदु छाया।
लखती, किशलय की गोदी में, हिलती कलिका की माया ॥

(३२)

अन्तरंग उसकी आली से, समझा जब उसका जीवन,
जाना, वह निशिदिन करती है, अन्तर से तेरा चिन्तन।
मुझसे पा सन्देश तुम्हारा, उसको ऐसा भास हुआ
परम तपस्या - सिद्धि - हेतु ज्यों सद्गुरु का आयास हुआ ॥

(३३)

दमयन्ती आचरणवती अति, सहज पुनीत हृदय जिसका।
उसका ऐसा प्रेम जहाँ हो, फिर सन्देह बना किसका ?
जिस पवित्रता में कटुता का, स्वप्न-बीच भी स्थान नहीं
उसका प्रेम अनन्य जहाँ हो, परम सिद्धि का भाव वही ॥

(३४)

भाव-अनन्य-जलज विकसित नव, मानस के शुचि कोने में।
प्रिय लखता अभिलाष-समीरण, सहज रागमय होने में ॥
हे, मधुग्राही ! प्रेम-गन्ध पा, मन का कर उपचार सहज।
उस तक होने की तत्परता, में जीवन का सार समझ ॥

(३५)

रूप-कला रच स्वयं विमोहित, जिसे हुई, वह दमयन्ती,
रति जिससे सब भाँति विलज्जित, ऐसी है वह रूपवती॥
प्रिया - भाव - हित सुमन चलाया, काम बेदना में डाला।
तुम दोनों का मिलन करा अब, सुर-गौरव पाने वाला॥

(३६)

प्रेम - मिलन - सन्देह - सहज ज्वर, दोनों पर ही वार किया।
कुशल वैद्य संदेश उचित ही, दोनों का उपचार किया॥
अब अन्तर की भूख जगी तो, काम-पीर का वेग बढा।
रागमयी अभिलाषाओं पर, नव जीवन का रंग चढ़ा॥

(३७)

दमयन्ती का हृदय-कनक जिस, ज्वाला से तप निखर सका।
वह विरहाग्नि सहज अन्तर की, अनुपम रूप बना उसका॥
माला दिव्य रचित श्रद्धा की, तेरे उर पड़ने वाली।
तेज धन्य होगा नृप, तेरा, पा विश्वासमयी लाली॥

(३८)

चक्र प्रेम - पुरुषार्थ - रचित शुचि, भाव-सुरथ में चल पाते।
त्याग-सहन - हय सिद्धि-लोक तक, निर्भयता से ले जाते॥
राज-मार्ग की चित्रावलियाँ, जिसे लगीं प्रिय लीला की।
मिलती प्रिय की उसे अलौकिक, मंगलमयी सहज झाँकी॥

(३९)

पथ के नव मादक वसन्त में, रूप सजे मधुमय वन के।
आशा से कोयल बोलेगी, भाव खिलेंगे तब मन के॥
सुमन विकस तेरे स्वागत में, पहले से तत्पर होंगे।
भावुक खग स्वागत-गीतों से, पथ का श्रम सब हर लेंगे॥

(४०)

नख-शिख व्याह-साज-सज्जित हो, मादकता छलकाती-सी।
गति सँवारती, दृष्टिपात से, काम-सुमन बरसाती-सी।।
पहुँचेगी वह परम सुन्दरी, ले यौवन का भार सुढर।
आलीगण के अग्रभाग में, निज कर जयमाला लेकर।।

(४१)

उर-अंकित तब रूप मनोरम, वहाँ निरखना चाहेगी,
मन के निज कोमल साँचे में, किसे सहज भर पायेगी?
बार-बार होकर तन-श्रमिता, श्रम-सीकर तन लायेगी।
जब न मिलोगे, दशा बता दो, उसके मन की क्या होगी?

(४२)

राजकुमार जहाँ तारक-सम, आकर स्वयं उदित होंगे,
जगमग सजी स्वयवर-भू पर, आकर निज आसन लेंगे।
वहाँ चकोरी दमयन्ती को, शशि बन रूप-शान्ति देने
जाना होगा आमन्त्रण पर, प्रेम-प्रयास सफल करने"।।

(४३)

बोला नृप, "खग, जो परार्थ में, पाता परमारथ झाँकी,
पर-हित पर पुरुषार्थ-क्रिया जब, चरम यास पाती उसकी
उसके इंगित पर प्राणों की, मोहमयी जड़ता चल दे
आकर्षण पाकर प्राणों में, गति की तन्मयता भर दे।।

(४४)

गुरु में कर विश्वास अटल जो, चले न मन में आशा धर।
प्रेम-नगर वह क्या देखेगा, भूलेगा अज्ञात डगर।।
चले सभी आशा के बल पर, गुरु-सम्मति ले प्रेम-नगर।
मेरे जैसे मानव में क्या, चले न जो भावों से भर।।

(४५)

गुरु के भावो की शिवता में, मिल जाती जो प्रेम-कला ।
वह तो भूली राह बताती, उसे न क्यो उर धरूँ भला ।।
सद्गुरु-संकेतित पथ चलता, शका तज अपने मन की ।
झाँकी उसको निश्चय मिलती, सत्य-प्रेम जीवन-घन की" ।।

(४६)

घर जाने का समय समझ कर, खग बोला कोमल स्वर मे ।
"रेखा प्रात: क्षितिज-धूम्र की, लीन हो चली अम्बर मे ।।
कर्म - निरत सूरज चढ आया, ऊपर नभ निर्भयता से ।
राजन, अब घर जा कर देखो, राज-काज तन्मयता से ।।

(४७)

कलरव त्याग फुनगियों से सब, छाया मे हो विहग रहे ।
छाया की गोदी मे पत्रक, व्यजन डुला उर उमग रहे ।।
पगी तितलियाँ नर्त्तन में कुछ, लगतीं आतप-व्यथिता-सी ।
देखो, तट चकवी चकवा लें, वेतस - नीचे पहुँच लसी ।।

(४८)

कुसुम - क्रोड में भ्रमर विलासी, राग-पान बेसुध करते ।
कलिकाओ के नव यौवन मे, सहज डूबते जो तिरते ।।
देखो, आतप-पीड़ा पाकर, "गुन गुन" कर कुछ उचट रहे ।
छाया-हित अब मृदुल-दलों से, मिल-मिलकर क्षण लिपट रहे ।।

(४९)

नृप वर, अब मैं भी जाता हूँ, तुम भी जाओ राज-महल" ।
नमन-भाव दोनो दे-लेकर, हुए समय कुछ भाव-विकल ।।
उड़ा हंस उत्तर-नभ यो कह, "आऊँगा फिर समय-समय" ।
रहा निरख नल निर्निमेष ज्यों, नयनो मे भर आश-निचय ।

(५०)

उड़ा हंस पिंगल पतंग-सम, सदल भाव-गुण से सधकर।
एकतान नृप मोह-भाव में, रहा निरखता नभ ऊपर॥
हुए विहग नयनों से ओझल, सार लिये ज्यों नभ वन का।
रूप न देखा, हुआ विवश नल, भाव जगा मोहद मन का॥

(५१)

अवसर स्वर्णिम स्वर्ण-विहग ज्यों, उड आया आशाधर से।
आशा देकर चला गया वह, दूर गगन आशा-पर से॥
सोच न पाया, गति क्या होगी, भावी आशा के पथ पर।
प्रिय उपदेश सहज संबल ले, चला भूप उर, धीरज धर॥

(५२)

उपवन-द्वार पहुँच राजा ने, देखा अश्व हींस भरते।
व्याकुल निपट सारथी मन में सोच रहा, नृप क्या करते॥
रथारुढ हो चला भूप कर शान्त सारथी घोड़ों को।
बाहर शान्त, हृदय पर लखता, मदन-बिभावित मोड़ों को॥

(५३)

रवि-शशि जीवन-ग्रह-वेला में, तम हरते तन से बाकी।
जगत पूजता भाव-लीन हो, पा अनुपम सेवा-झाँकी॥
पीर-ग्रसित वैसे ही राजा, प्रजा-भाव को तज न सका।
जनता प्रभु से नित्य मनाती, हो कल्याण सदा नृप का॥

(५४)

प्राची की गोदी से चलकर, सन्ध्या की गोदी छिपता।
दिनमणि तारों को श्रम देकर, अपने मौन डगर धरता॥
निशि में नल शय्या पर लेटे, किससे पूछे पथ अपना।
भीतर मन की चित्रपटी में, चलता था कल्पित सपना॥

(५५)

मन की कल्पित रूप-साधना, साध्य भाव-हित चलती थी।
इच्छाभर वह साज सजाकर, उर-साँचे में ढलती थी।।
पर बाहर पाकर न कहीं उस, रूपवती की कल रेखा।
पड़ जाता सदेन्ह-जाल में, लख मोहक चिन्तन-लेखा।।

दमयन्ती-चिन्तन-सर्ग

(१)

उधर दशा क्या दमयन्ती की, स्वयं दशा चिन्तारत ज्यों।
धीरज भ्रमर-लकीर-नीर सम, बन मिटता मानसगत ज्यों।।
प्रेम-पीर का नव संवेदन, चपल लहरियों-सा बनता
उस जीवन का वेग कहाँ, क्या, प्रेम-पुलिन से जो मिलता।।

(२)

संवेदन की भोली माया, भली लगी थी सोने से।
आयी पीड़ा उसे जगाने, जीवन के किस कोने से?
शिशुता का शुचि जलधि नाँघ कर, काम-कला किरणों वाली।
आयी चुपके से समीप उर, लेकर भावमयी लाली।।

(३)

जगमग दीपित-सी उर-बेला, किन्तु कसक देने वाली।
परवशता की राह दिखाकर, स्वयं हुई-सी मतवाली।।
कहते जाओ लाख किन्तु वह, कहीं न कुछ सुनने वाली।
उसको धुन केवल पाने की, अपने प्रियतम की लाली।।

(४)

लज्जा के आवरण-बीच वह, झाँक रही थी कोमलता।
रूप-कला की चकाचौंध में, भ्रमित पड़ी-सी मोहकता।।
किन नयनों मे वह स्थिर होगी, लेकर प्रेम-भरी प्याली।
जिसके रस में मिली हुई थी, मादक प्रियतम की लाली।

(५)

मृदुता लाजभरी कह पाती, अपने मन की बात कहाँ ?
पर चलने की दृढ़ता रखती, प्रिय-जीवन की राह जहाँ ।।
संकल्पों के नव झोंको मे, पड़ी हुई भोली - भाली।
अपने मन की प्रेम-डगर में, खोज रही मुँह की लाली ।।

(६)

प्रिय संकल्पो की धारा में, अम्बर विविध रूप धरता।
रागारुण सन्ध्या के आगे, अपना मोहक तन करता ।।
श्याम रूप धर निशि से मिलता, लख बेसुधता की प्याली।
प्रात सजग नव रूप दिखाता, पाकर ऊषा की लाली ।।

(७)

सन्ध्या अपना राग दिखाती, दूर क्षितिज की बाँहों में।
जग को केवल तम दे जाती, सहज प्रेम की राहों में।।
स्नेह-दीप ले बाला खोजे, आशा मे **वह** उजियाली।
क्यों न उसे सन्ध्या दे जाती, अंक-भरी निज-सी लाली ।।

(८)

रजनी आकर कुछ कह जाती, उसे अकेली पा करके।
चिन्तन में नव व्यथा जगाती, मौन कथन समझा करके ।।
अब न अकेली रहने वाली, उठी पीर उर मतवाली।
दीपक जलकर क्या सुख देगा, जहाँ न प्रियतम की लाली ।।

(९)

आभूषण-तारक तन पाकर, अंकमयी बन कर वामा,
मृदुल हासयुत शशि को पाकर, विलसित प्रेमभरी श्यामा ।।
श्यामा-शशि का हास-मिलन वह, दमयन्ती को रुच न सका।
कुछ कह पाती यदि मिल जाता, आकर ढिग उससे उसका ।।

(१०)

शशि-दर्शन की असफलता में जलता दीपक पास मिले।
थकित चकोरी लौ में देखे, जैसे निज आशा मन ले॥
वैसी भोली दमयन्ती थी, लौ-पूरित अन्तर वाली।
दिपती उर की लौ-रेखा में, परख रही प्रिय की लाली॥

[११]

सौरभ लेकर पवन पहुँचता, लाज जगा देता मन में।
अपनी कोमल शीतलता से, कम्पन भर देता तन में॥
दूर-देश से वह आकर भी, कुछ सन्देश न कह पाता।
किसकी गन्ध लिये मधुमाती, बार-बार आता-जाता॥

[१२]

'गुन-गुन' कर सन्देश श्रवण तक, भ्रमर कहीं से ले आता।
प्रेम-लोक की भाषा में वह, सचमुच ही कुछ कह जाता॥
दमयन्ती भी समझ रही थी, समय-भाव की वह बानी।
प्रेम-पाठ की वह मृदु भाषा, अब न रही उर अनजानी।

[१३]

श्रवण-समीप भ्रमर जब आता, ध्यान लगाकर सुनती थी।
मुख-समीप जब आकर होता, भाव-पगी कुछ कहती थी॥
कहने-सुनने की मृदु भाषा, अंकित होती अन्तर में।
मन ही मन वह अर्थ लगाती, बाहर कह दे किस स्वर में॥

[१४]

तारे नभ के रोज निरखते, पर न कहीं कुछ कह पाते।
श्यामा के श्रृंगार-हेतु ही, वे निष्ठुर आते-जाते॥
किस पावन आलोक-लोक से, ज्योति चुरायी मतवाली।
उसमें ही शायद बसती हो, प्राण-दायिनी प्रिय-लाली॥

[१५]

किस कोने से लज्जा आकर, गुरुता का मृदु भार दिया ?
यौवन का मोहक कगार पा, शिशुता को अब पार किया ।।
काम-लोक के किस उपवन में, रही लाज वह मतवाली ।
छिपती कलिकाओं-सी विकसी, भासी ले मधुमय लाली ।।

[१६]

क्या नभ-तारे जान सकेंगे, प्रेम-खचित रेखा क्या है ?
मन की आशाओं में भोली, बाला ने देखा क्या है ?
किससे पूछे कहाँ ले चले, अपने सुमनों की डाली,
जहाँ समर्पण सहज कर सके, भटकी-सी भोली-भाली ?

[१७]

शशि प्रतिबिम्बित था सरसी में, शतरूपो मे विहँस रहा ।
लहरों की माती बाँहों में, बेसुध-सा वह विलस रहा ।।
प्रेम-भरे अञ्चल मे कामुक, छिप-छिप कर फिर झाँक रहा ।
सुन्दरता में मादकता को, किन आँखो से आँक रहा ? ।।

[१८]

क्रीड़ित-सा लगता लहरों में, पर वह शशि नभ मे हँसता ।
परम सत्य अपनी माया मे, भासित जैसे जग रचता ।।
क्या ऐसी ही ज्ञान-साधना, रुक कर कुछ समझायेगी ?
प्रिय की बाँहे जो न मिलेंगी, कौन व्यथा हर पायेगी ?

[१९]

रे शशि! तव मुस्कान निरख मृदु, उदधि उमड़कर कँप जाता ?
क्यों न लिपट उर्मिल बाँहों में, आ धीरे से झँप जाता ?
क्यों रह अम्बर में सुदूर तू, व्यथा व्यथित उर को देता ?
लहरों के कोमल प्रयास का, क्यों न उभार सफल करता ?

[२०]

क्या रत्नाकर बाँह उठाकर, कभी तुझे भी धर लेगा ?
यदि न मिला जीवन भर शशि! तो, तेरा हँसना क्या होगा ?
प्रेम-भरी बाँहें न मिलीं तो, क्या होगी तव मुस्क्याली ?
मात्र विरहिणी बालाओं की, आँखों में भर उजियाली ?

[२१]

चाहे जितना दूर बसो पर कहाँ प्रेम का भान हुआ।
आलिगनगत आत्म-विसर्जन, का न तुझे कुछ ज्ञान हुआ ।।
रे शशि, केवल तरसाना ही, तू जीवन में सीख सका।
अपनी मृदु मुस्कान दिखाकर, भला किया तू ने किसका ?

[२२]

तू रजनीगत विरह-व्यथा में, आग लगा देने वाला।
उस ज्वाला का भाव न जाना, केवल मद में मतवाला ।।
हर न सका उर की पीड़ा तो, क्या मोहक जादू डाला।
शशि, तव मोह-कला बाहर की, अन्तर का अतिशय काला ।।

[२३]

प्रियतम का शशिहास निरख कर, कब श्यामा लज्जित होगी ?
दूर श्यामता निज करने को, दिव-सर विनिमज्जित होगी
कजरारी आँखों में लेगी, भाग श्यामता शरण तभी
क्या ऊषा को बहन बनाकर, रुक लेगी उसके ढिग भी ?

[२४]

रजनी भरती राग-रंग प्रिय, प्रेम-मिलन व्यापारों में,
विरह-दशा में आग उगलती, लौ के कटु उद्गारों में।
इच्छा की नव प्रेम-पकड़ में, बनती चिन्तन की डाली
सुमन-रंग की आशाओं में, कटक प्रतीक्षा मतवाली ।।

[२५]

नीद समय पर आकर मन की, व्यथा भुला देने वाली,
सुधि-विहीनता की मदिरा दे, गोदी मे लेने वाली,
पर वह भी अब साथ छोड़कर, कहाँ गयी भोली-भाली,
उसकी सुधि पर जाग रही अब, भावी प्रियतम की पाली ।।

[२६]

वार-वार बाला पुकारती, निद्रे, संगिनि, आ जा रे,
चित्त धरोहर मेरा रखकर, बेसुध मुझे सुला जा रे,
जब जागूँ, तब फिर दे देना, प्यारी-प्यारी सुधि मेरी।
जिसमें आशा बनी रागिनी, देती-सी रहती फेरी ।।

[२७]

निद्रे, या मेरी सुखि पहुँचा, भाव-लोक के उस बन में।
पंचम ध्वनि पिक की सुन गुनकर, जहाँ सोच रत प्रिय मनमें ।।
श्रवण-समीप पहुँच अलि उसके, ‘गुन-गुन’ कर कुछ कहता हो।
भाषा उसकी समझ सके, इसलिये भाव कुछ भरता हो ।।

[२८]

‘कहूँ-कहूँ’ कर तरसाती हो, मदन-वाण की ओट लिये।
शुभ सन्देश न कुछ कहती हो, फिर भी हो प्रिय कान किये ।।
मधुमाया की लहर उठाती, आती ध्वनि श्यामा की हो।
सुपमा का कल्पित स्वरूप हो, प्रकट न उसकी झाँकी हो ।।

[२९]

बार-बार आँखें जाती हो, मजरियो की डाली पर।
पवन झूम पत-घूघट कर दे, श्यामा मधु-मतवाली पर ।।
मदन-भाव मन में भरती हो, रूप रंग की वह काली।
फिर भी नयनों में रखती हो, प्रिय वसन्त की मधु-लाली ।।

[३०]

श्यामा के मादक उत्सब में, मेरी सुधि ले चल आली ।
मधुलीला प्रिय निरख रहा हो, टेक लगा कर नत डाली ।।
मृग-शावक भोली आँखो से, होड लगा क्रीड़ा-रत हो ।
ढिग रम्भा उरु-गठन देखकर, पत्र झुका सम्मुख नत हो ।।

[३१]

ढिग फुनगी पर लटक-लटक शुक, प्रिया-सहित हो क्रीड़ा में ।
निरख सुभग तन सुघर नासिका, शुक-जोड़ी हो व्रीड़ा में ।।
कुसुमित बल्लरियाँ मधुमाती, रत हो तरु-आलिंगन मे ।
परियों-सम तितली-दल जिनपर, निरख सोच-रत प्रिय मन मे ।।

[३२]

उत्तरीय की मृदु फहरन में, नव यौवन लहराता हो ।
पवन गुदगुदी उर भरने को, प्रिय-ढिग आता - जाता हो ।।
हे, सखि! वहीं भुलावा देकर, प्यारी सुधि को ले जाना ।
उसी पवन की शीतलता मे, उसको विनिमज्जित करना ।।

[३३]

कर्णिकार-तरु-तले कलापी, प्रिय ध्वनि स्वर में भरता हो ।
केश-जाल में फिर घन-श्री लख मोहक नर्त्तन करता हो,
प्रिय पाये फिर भी उदास तरु, खिल न हुआ जो मतवाला ।
सुन्दरियों के मृदु नर्त्तन से, जो श्री भर हँसने बाला ।।

[३४]

मेरी सुधि तू रूपवती कर, वहाँ नचा देना आली ।
स्वर्णिम सुमन-विकास-रग में, गोद बची कुछ हरियाली ।।
नीचे भावी प्रियतम मेरा, निरख रहा हो धर डाली ।
नर्त्तन का जब भाव समझ ले, रह जाये मुख की लाली ।।

[३५]

सुस्वर गायन से समीप के, तरु नमेरु प्रमुदित मन हों।
कोमल पदाघात मे आली, तरु अशोक भी अनुपम हो।।
मोहक हास्यजनित भावों से, चम्पक तन सिहरन भरले।
स्पर्श-लाभ कर वह प्रियगु मिल, निज इच्छा पूरी कर ले।।

[३६]

भावमयी मदिरा अधरो पर, लखकर बकुल विकसता हो।
नयनो का व्यापार तिलक लख, पाता नयी सरसता हो।।
आलिगन की मृदु माया से, कुरवक-डाली हिलती हो।
मोहक मृदु मुस्कान देखकर, चम्पक-कलियाँ खिलती हो।।

[३७]

मुख से लेकर बाम समीरण, मिल ले मधु मजरियो से।
पर फैला तितली-दल नाचे, होड़ लगा ले परियो से।।
निष्ठुर भ्रमरो का गुण-गायन, मादकता द्विगुणित कर दे।
बोली भरी ठिठोली की पा, कनक विकास नवल भर दे।।

[३८]

सुप्त पडा तन, मन सपने में, सुधि मम सहज बुला लेना।
सखि निद्रे! माया अपार तव, तेरे कर सपना-सोना।।
दिवस-रात का भेद मिटाकर, लीला सरस दिखा देना।
स्वप्निल सुघर रूप-माया रच प्रिय से उसे मिला लेना"।।

[३९]

समय-जनित मन-उहापोह मे, आशा साथ हुई आली।
कभी बदलकर रूपरग वह, बनती चिन्ता मतवाली।।
मनन-रूप लीला रच बनती, कभी मनीषा मन वाली।
वही शिथिल नयनो मे बनती, भावी प्रियतम की लाली।।

[४०]

श्रद्धा की गोदी में बैठी, बाँह उठा प्रिय से कहती।
कभी शिथिल चिन्ता कर होती, प्रिय से दूर पड़ी रहती ॥
बुद्धि कहीं कुछ पार न पाती, चिन्तन की पा उजियाली।
नव आँसू बन बहने लगती, प्रेममयी प्रिय की लाली ॥

[४१]

सुधि भोली शतरूप बनाती, प्रिय चरणों तक होने को।
कहीं कनक-जीवन-वेला क्षण, सहन न करती खोने को ॥
मन की मोहक नयी कल्पना, बार-बार समझाती-सी।
वासन्ती के रूप रंग में, वही छटा दिखलाती—सी ॥

(४२)

यों मन के मोहक प्रलाप में, रात-दिवस आता-जाता।
फिर भी अन्तर के पट-ऊपर, रूप रंग नव भर पाता ॥
कल्पित भावों के चित्रण की, चलती-सी उर्मिल धारा।
सोच यही, कब आकर लेगा, अवगाहन अपना प्यारा ॥

(४३)

हृदय-शिखी जब परख सका वह, प्रेम रूप जीवन-घन का।
स्वयं भूल वह नर्त्तित होता, ध्यान कहाँ तन, मन, वन का ॥
इसी भूल के अन्तराल प्रिय, चपला-सा मुस्का लेता।
उर-बन्धन की वह चमकीली, डोरी सहज दिखा देता ॥

(४४)

जिसका पा आभास मनोरम, मन की अपनी माया में, ।
श्रद्धा पा विश्वास विटप-तल, बैठी जाकर छाया में ॥
वह तो रही कल्पना भावी, पर मन में ज्यों सत्य बनी।
भीतर-भीतर बाँध चुकी-सी, बन्धन की डोरी अपनी ॥

(४५)

नव यौवन की रस-धारा में, प्रेम-वेदना आती जब ।
लक्षित सुन्दरता-हित चलती, बीच कहीं रुक पाती कब ? ।।
आशा का प्रिय पुलिन मनोहर, जब तक सहज न मिल पाता ।
कल्पित लहरो मे लहराता, तब तक मन चलता जाता ।।

(४६)

बाहर जगमग अब वसन्त श्री, कहाँ उसे सुख दे पाती ?
अपने वैभव की सुन्दरता, ले बहार आती-जाती ।
पर भीतर की प्यास उनीदी, सजग रूप जब दिखलाती, ।
लक्षित जीवन मिले बिना फिर, शान्ति कहाँ से आ पाती ? ।।

(४७)

मृदुल आलियो का आलिगन, क्रीड़ा-समय विकल करता ।
परिहासा परिहास उड़ाती, मुस्काने का क्षण मिलता ।।
पर वह तो मुस्कान बाहरी, भीतर पीर सुलगती-सी ।
आशा उर में लेटी जैसे, करवट रही बदलती—सी ।।

(४८)

प्रेम-परीक्षा के हित आली, सरस कहानी कह जाती ।
राजकुमार अनेक वरण-हित, नाम, देश, गुण बतलाती ।।
भावी रचित स्वयवर में जो, थे कुमार आने वाले ।
नाम अनेक कहीं कानो को, तनिक न सुख देने वाले ।।

(४९)

अन्तरंग आली की बोली, उस प्रसग की जँच न सकी ।
कथन बहुत कर कह न सकी वह, बात सरस उसके मन की ।।
वह प्रसन्नता ला न सकी तब, राजकुमारी के मुख पर ।
भाव जगाती भिन्न भाव से, कल्पित कथन-सहित सुन्दर ।।

(५०)

तब प्रसंग प्रारम्भ किया फिर, निषध-राज की धीरे-से ।
सजग चेतना फिर से झाँकी, आँखों के उस कोने से ।।
सहज चन्द्रिका अन्तराल से, घन के जैसे झाँक सकी ।
बेसुध पड़ी चकोरी-सी वह, भावी दर्शन आँक सकी ।।

(५१)

‘ सहज दया की भावभरी जिस, नर की सुघर कहानी हो, ।
क्षण-क्षण नवता भरने वाली, श्री की जहाँ निशानी हो, ।।
पौरुष ले पुरुपार्थ अखण्डित. जिसका सदा सहायक हो, ।
उस राजा की कथा अलौकिक साहस जिसका पायक हो ।।

(५२)

मधुऋतु से भी होड़ लगाता, जिसका जीवन चलता हो ।
सुमन-विहारी से जिसका मन, सरस कहानी सुनता हो, ।।
उसके नव जीवन-वसन्त की, श्री किसको धरने वाली ?
पता नहीं उस रसिक भ्रमर को, कौन कली मिलने वाली ।।

(५३)

सुघराई जिसके अंगो को, निज कर सहज सँवार रही,
करुणा जिसके उर-भावों से, स्वार्थ-रहित कर प्यार रही,
जिसका पा विश्वास सफल तव, श्रद्धा का अञ्चल होगा ।
वह नर हे, सखि! तुझे बता दूँ, केवल राजा नल होगा ।।

(५४)

काम-भोग से आत्म-योग तक, जीवन का व्यापार रहा ।
रागमयी लीला रचने को, सुन्दर यह संसार रहा ।।
सहज समर्पण से लीला में, जिस पर प्रेम सफल होगा,
वह नर, हे सखि ! तुझे बता दूँ, केवल राजा नल होगा।।

(५५)

तव यौवन-सौन्दर्य-जलधि में, मादक लहरें भातीं-सी।
प्रति तरंग शशि-रूप-हेतु ज्यो सुन्दर क्रोड़ सजाती-सी।।
उस मुस्काते रजनी-पति से, सजा सहज अम्बर होगा,
वह शशि, हे, सखि ! तुझे बता दूँ, केवल राजा नल होगा।।

(५६)

चपला-सी तन-ज्योति निराली, पर न अकेली सज पायी।
श्यामल घन से विछुड भूल कर, कैसे वह भू पर आयी ?
तुझसे भर निज अंक विहँसकर, अम्बर बीच सफल होगा।
वह घन, हे सखि! तुझे बता दूँ, केवल राजा नल होगा।।

(५७)

पुष्पित कोमल लतिका-सी तव, सजी देह - श्री यौवन मे।
पर तरु से मिलकर अरुझाना, भूल गयी क्यों जीवन मे ?
लिपट विटप से सुमन रंग ले, रहने मे ही बल होगा।
वह तरु, हे सखि ! तुझे बता दूँ, केवल राजा नल होगा।।

(५८)

आशाओं की कोमल कलियाँ, जिस बहार में खिल जाती।
भावो के जागे अलिदल को, मन की मधुता मिल पाती।।
चाहमयी उन मंजरियों में, बोधक कोकिल - स्वर होगा
वह वसन्त, सखि, तुझे बता दूँ, केवल राजा नल होगा।।

(५९)

सहज परख रखने वाली जो, बालायें सुन्दरता की,
सपने में जिसको पाने से, रहती नही कभी बाकी,
जिसको पाकर प्रेम-कला से, पूरित तव अन्तर होगा।
वह नर हे सखि, तुझे बतादूँ, केवल राजा नल होगा।।

(६०)

आकर्षण की नित नव माया, जिसकी शोभा रच पाती,
बालाओं के स्वप्निल उर पर, मृदु क्रीड़ा में बल खाती।
भर मादक विकास की लीला, रति-रस-जादू की रचना—
करने वाला निश्चय होगा, राजा नल तेरा अपना।

(६१)

स्वाती-घन-जीवन-आशा से, प्यासा चातक रटता-सा।
अम्बर लख पुकार उठता वह, उस पर मरता मिटता-सा॥
ऐसी तेरी चाह बने तो, जीवन पा जाये रसना।
हे सखि, वह घन निश्चय होगा, राजा नल तेरा अपना॥

(६२)

ऊषा निज श्रृंगार सजाकर, सस्मित प्राची में आती।
अम्बर की मन-मोहक गोदी, प्रेम-भरी वह नित पाती॥
वैसे ही रस-राग-अंक का, तू जो देख रही सपना।
उसका पूरक निश्चय होगा, राजा नल तेरा अपना॥

(६३)

कलित रागिनी-सा तव जीवन, राग परख मिलना होगा।
स्वर-लहरी से नर-जीवन का, गीत सरस करना होगा॥
भाव-लीनता में अन्तर का, बूझ पड़े शायद सपना।
वह बोधक सुराग सखि! होगा, राजा नल तेरा अपना॥

(६४)

तेरे जीवन की लहरीली, रंग-विरंगी नयी-नयी।
शोभा-सरिता बहती रहती, समय-शिला भू—ढालमयी,
अपने समतल अन्तर-भू पर, धार सके जो वह बहना,
वैसी समतलता का होगा, राजा नल तेरा अपना॥

(६५)

हे, सखि ! चयन तुझे करना है, माला तेरे कर होगी ।
इष्ट स्वयंवर में पायेगी, निष्ठा यदि अविचल होगी ॥"
इस प्रकार समझाकर आली, साथ लिये घर-ओर चली ।
ज्यो वसन्त की विकसित कलियाँ, गति पाकर पथ लगी भली ॥

स्वयंवर-साज सर्ग

निश्चित कर समय स्वयंवर का
करते विचार नृप बार-बार।
बेटी के भावी जीवन पर
कुछ सोच-निरत लख निज दुलार ॥१॥

पुत्री का समझ विवेक भाव
होते कुछ स्वस्थ विदर्भ—राज।
निर्णय शुभ समझ स्वयंवर का
पुलकित होते लख समय-साज ॥२॥

कोयल निज गान सुनाती थी
कहती जैसे मंगल होगा।
मजरी-क्रोड में लालित स्वर
निज प्रिय-सुराग-विह्वल होगा ॥३॥

सब साज सजे शुभ नगर-बीच,
सज्जित निसर्ग-श्री यौवन में।
शोभा बहार दिखलाती थी
रसता से पूरित जीवन मे ॥४॥

पा एक रंग की श्री चपला
मुस्क्या कर स्वयं लजा जाती
बहुरंगी जगमग, नगर-कला—
फिर देख सामने क्यो आती ? ॥५॥

अम्बर-श्री सहज श्यामता में—
शशि-रास-कला चित्रित करती
पर अब वह आ कुण्डिनपुर की—
रचना में नव शोभा भरती ।।६।।

मंचों की रचना ऐसी थी
गजदंतमयी, चित्रण वाली,
जिसपर सुवास की निजता ने
अपनी मोहक छाया डाली ।।७।।

मणि-खचित स्तंभ की रचना में—
सुमनों की छटा निराली थी,
जिन पर उड़ दूरी से आकर
भ्रमरों ने शोभा पा ली थी ।।८।।

बहुरजित पगी तितलियो से—
मादकता आकर भरती-सी,
सुमनों की मधुता पाने को
मानव-मन से भी कहती-सी ।।९।।

गन्धों की रम्य व्यवस्था में—
अलिदल भूला चकराता था।
गुजित प्रतिध्वनि की माया में—
अपने को विचलित पाता था ।।१०।।

खग-रचना ऐसी यथा - ठौर
स्वाभाविक मुद्रा पाती थी
उड़ पक्षी आ करते सलाह
वह समाँ और बन जाती थी ।।११।।

पत्तों की सुन्दर रचना में—
छिप कोयल कूक सुना पाती
छवि के परदे में लुक-छिप ज्यों
स्वर-मोहन-बाण चला जाती ॥१२॥

सज्जित अति कलित व्यवस्था में—
थी लता-सुमन की सुघर पाँति।
विरचित सुढार - शृंगारमयी
अपने विकास में भाँति-भाँति ॥१३॥

फूलों की मृदु मुस्कान सहज,
हरियाली - बीच झाँकती थी।
किसलय के कोमल कम्पन से—
भावी छवि - छटा आँकती थी ॥१४॥

पिक के स्वर में मुखरित होकर
स्वीकृति पा सरल सारिका की,
मंडप-श्री अपने वैभव में—
अब रहती कहाँ तनिक बाकी ॥१५॥

मधुमय निसर्ग की बाँहों में—
मानव की कोमल कला खिली
जैसे विहार-वन गलबाँहीं—
दे, शोभा पा शृंगार चली ॥१६॥

माधुर्य स्वयं ही आ जाता
सब छोरों से आशाओं के।
कौतूहल का कारण बनता
कुण्डिनपुर की ललनाओं के ॥१७॥

सखियाँ दमयन्ती को सँग ले
प्यासे भावों में रस भरतीं।
सन्ध्या में तज उपवन - विहार
मंडप-श्री में बिहार करतीं ॥१८॥

पग-पग रचना शोभा-वर्द्धक—
बालाओं ने जमकर देखा।
दमयन्ती के मन-भावों का—
कर दे कवि कौन कहाँ लेखा? ।१९॥

वह समाँ निराली होती थी
बालायें हलतीं मंडप मे।
मधु-छटा उमडती-सी लगती
उनके क्रीडामय मृदु गप में ॥२०॥

पक्षी उड़-उड शोभा पाते
नव पल्लवमयी टहनियों से,
उमड़े मन के नव भावों में—
कुछ कह जाते मृदु ध्वनियों से ॥२१॥

हो जाता था रोमाञ्च सहज
उद्गारों से अपनेपन के।
क्षण अवगाहित होती बाला
भावों के सागर में मन के ।२२॥

सखियों-सँग· मादक विचरण में—
आगे पग धरती जाती थी।
ममता की आँखों से शोभा
बाहर इच्छाभर पाती थी ॥२३॥

मंचों की रचना अद्भुत थी
छवि के विकास में द्वन्दमयी,
जिसको लख मोहक रेखायें—
बनती थी मन में नयी-नयी ॥२४॥

मंडप-वेदी पर जाकर तब
वैदर्भी भाव नवल पाती।
भावी प्रसंग की बात सोच
अपने में आप सहम जाती ॥२५॥

पथ की रचना कुछ ऐसी थी
जिसमें न कही अवरोध बने,
आपस की द्वन्द-भावना से—
उत्सव-पथ पर न विरोध ठने ॥२६॥

भीतर प्रवेश के द्वार स्वय—
इंगित से पथ बतलाते थे
आसन किसको है कहाँ योग्य
विधिवत यह भाव जताते थे ॥२७॥

रक्षक-सैनिक-दल-राह अलग—
द्वारों से सूचित होती थी
प्रत्याशी नृप, दर्शक-दल की
वह पृथक व्यवस्था लगती थी ॥२८॥

पथ अन्दर से वर्त्तुलाकार,
आसन सबको दिखलायी दे,
यंत्रों की ऐसी कला रही
ध्वनि सबको सहज सुनायी दे ॥२९॥

बाला सबको दिखलायी दे
जयमाला लेकर चलने पर,
शोभा - विहार, शृंगार - कला
का मूल्य आँक लें सब जी भर ॥३०॥

शोभा के मंडप में आकर—
सुन्दरता क्या है कहलाती,
सन्ध्या निज पिंगल किरणों से—
वह भाव दिव्य आ बतलाती ॥३१॥

बालाओं का किल्लोल - भाव
सन्ध्या में नित अभ्यास बना।
नाना विधि खग-दल-कलरव में—
होती भावों की नव रचना ॥३२॥

सन्ध्या विहार की बेला में—
उन दिव्य लताओं से छनकर,
सस्मित दमयन्ती के मुख पर
कर-श्री बिखेरती भाव सिहर ॥३३॥

बहुविकसित छटा प्रसूनों की—
पत्तों की नव हरियाली में।
खगदल - कलरव, बाला - विहार
सन्ध्या की छनती लाली में ॥३४॥

मंडप-श्री में बालाओं की—
मुस्कान मृदुल छवि पाती थी।
ऊषागत पंकज - कलिका - सी
खिल फूली नहीं समाती थी ॥३५॥

रस-कथन साथ पग-चालन में—
जादू का भाव प्रकट करता।
नूपुर-ध्वनि से रस-राग लिये
कंगन-स्वर-साथ लिपट रहता ॥३६॥

सुन्दर अति सहज सजावट जो
मन के साँचे में मिल जाती
मधु-सार-परख रखने वाली
बालाओं के सँग खिल पाती ॥३७॥

शोभा की दिव्य कल्पना जो—
नयनों में विकसित हो बसती
सखियों में उसकी झाँकी ले
सन्ध्या भोली स्वराह धरती ॥३८॥

सन्ध्या में यों बालाओं का
आना-जाना, विहार चलता।
भावी तत्परता की लीला—
मे मन का नव विचार मिलता ॥३९॥

कर राज-कुमारो की गणना
फिर सोचे गये विचारों से—
आमंत्रण-पत्र लगे जाने
अति धूम-धाम के भावों से ॥४०॥

अति दूर देश तक पत्र लिखित
पहुँचाये गये धावनों से
सुन्दर प्रशस्ति, सम्मान कला—
के साथ सजे आवरणों से ॥४१॥

गंगा - यमुना के देशों से—
फिर सिन्धु - देश तक समाचार
दक्षिण में पहुँचा यथा ठौर
शुचि कावेरी के आर - पार ॥४२॥

फिर आर्यावर्त - देश - बाहर
धरती तल पर कोने - कोने,
उस रूपवती के पाणि - ग्रहण—
की चर्चा लगी मधुर होने ॥४३॥

सन्ध्या लखकर मंडप - विहार
पश्चिम - लोको तक कर प्रचार,
छिपती किरणों की चितवन से
दिखला देती नित रूप - सार ॥४४॥

अपनी शोभा जिसको देकर—
भोली सन्ध्या छिप जाती थी,
उस बाला का मंगल - प्रचार
निशि - बेला में कर पाती थी ॥४५॥

सन्ध्या - ऊषा दोनो बहने—
निशि-दिवस-लोक मे कर प्रचार,
मंगल सिन्दूरी विभा दिखा
तब जाती थी नित क्षितिज-पार ॥४६॥

परिमल लेकर चलता समीर
करता प्रचार था सहज घूम।
बाला के दिव्य स्वयंवर की—
क्षिति से अम्बर तक मची धूम ॥४७॥

निशि विरल घटा निज साथ लिये
नभ समय भूल चपला आती
सिन्दूर - विभा दिखलाती कल
घन - केश - राशि में बगराती ॥४८॥

चपला जैसे दमयन्ती - सँग
कल रूप-राशि में हो ली हो
इसलिये प्रेम के बन्धन की
चमकीली डोरी खोली हो ।४९॥

घन-अवगुंठन में लुक - छिप शशि
सस्मित अम्बर शोभित करता
बाला के व्याह प्रशिक्षण में—
लज्जा के भाव ललित भरता ॥५०॥

दिनपति अम्बर में आता जब
लखता था साज स्वयंवर का
धरती पर स्वर्ग - साधना का
जैसे कुछ लगा उसे चसका ॥५१॥

सुन्दरता उतरी रूप लिये
मुस्काती किरण-पालनों से
ऐसा लगता कुण्डिनपुर को—
नन्दित कर देगी शुचि कर से ॥५२॥

सर्वत्र सुशोभित चहल - पहल
कुण्डिन पुर भव्य स्वयंवर की,
जड़ता तक लख मोहित होती
फिर कौन कहे सुर, मुनि, नर की ॥५३।

धरती का लेकर समाचार
नारद जा पहुँचे स्वर्ग - लोक।
सँग इच्छागामी पर्वत ऋषि
वीणा - ध्वनि सुन चलते अरोक ॥५४॥

परिवर्त्तन की मृदु तानमयी—
स्वर - लहरी पहुँची सुर - पुर में,
नन्दन - विहार, अमृत लीला—
को मोहित करती निज स्वर मे ॥५५॥

अलि-गुंजित हवा सुबास लिये
पर-दल मृदु मधुर मरोर रही,
कुसुमित विलसित खग-डालो से
मधु-मादकता ज्यो तोल रही ॥५६॥

देखा ऋषि ने स्वर्गिक वसन्त,
फूलो का सन्तत मुस्काना,
बहुरंगी पखो से नर्त्तित—
तितली-दल का मधुरस पाना ॥५७॥

कोयल की कूक निराली थी—
उठती सुर-वन के छोर रही,
बेसुध भोगी के अन्तर को—
रस की धारा में बोर रही ।५८॥

गलबाँही के आलिंगन में—
मोहित जो बहते विषय-धार
उनको अपनी स्वर - लहरी से—
करती धकेल क्षण मनः पार ॥५९॥

नाना रंगों के फूलों से—
तरु-दल की मधुर बहार भली।
खगरूप पिहकती मादकता—
सन्तत विलास की ओर चली ॥६०॥

कजरारी छायी बदली में—
सन्तत चपला का मधुर लास।
नीचे नित होड़ मिलाता-सा
चलता परियों का रस-विलास ॥६१॥

नाना प्रकार की सुख-लीला
जो वहाँ निरन्तर चल पाती,
वह लगातार सुख-भोग-भुक्ति
सुर-भोगी को भी खल जाती ॥६२॥

ऋषियों ने सोचा, सुख ही सुख—
में रहना करुण विरसता है।
दुख से सुख की जब नाप नहीं
उसमें फिर कहाँ सफलता है? ॥६३॥

विषयों का सुख हो लगातार
उस पथ में जीवन-सार कहाँ?
स्वर्गिक मेला तो भार सदृश
इसमें प्रियतम का प्यार कहाँ? ॥६४॥

गरिमामय ओज भरा आनन,
गतिभाव देख तप के बल का,
दर्शन में आशा की पुकार
लख भाव जगा कौतूहल का ॥६५॥

सद्भाव सहित सुरजन करते—
मुनियों का मिल नत-सिर वन्दन।
दे-लेकर समुचित समाचार
अति मुदित हुए सब देव-सुजन ॥६६॥

सुरराज मिला स्वागत-विधि से
ऋषिवर पहुँचे जब दिव्य भवन,
चरणों में शीश झुकाकर निज
सद्भावपूर्ण तब किया नमन ॥६७॥

पूछा धरती का क्षेम-कुशल
जो कर्मभूमि विख्यात बनी,
परिवर्त्तन की सुख-दुख-लीला
दिखलाती जो अद्भुत अपनी ॥६८॥

शुचि प्रेम-ज्ञान की धारायें
जिस भूपर सदा निखर भाती,
गति-भावमयी रस की लीला—
अन्तर में नव रस भर पाती ॥६९॥

सूरज प्रकाश भर किरणों से—
जिस धरती को जीवन देता,
शशि शीतल अपनी विभा लुटा
भू—जीवन-भाव सफल करता ॥७०॥

किरणें अम्बर मे दौड़-धूप—
जाती हैं पाने त्राण जहाँ,
अपनी निधि जिसे धरोहर दे
निर्भय पाती विश्राम वहाँ ॥७१॥

नाना ऋतुओं के हाथों से—
जिसका मोहक शृंगार भला
उस प्यारी भू का कुशल कहें
मानवता पाती जहाँ कला ।।७२।।

ऋषियों का देश दुलारा वह,
उस भारत-भू की कथा कहें,
जिसकी तप - लीला समझ - बूझ
क्योंकर जीवन में व्यथा रहे ? ।।७३।।

अपना यह लोक तरस जाता
जिस तपोभूमि पर जाने को।
संतत सुर-लीला भार बनी,
अब इच्छा नव गति पाने को ।।७४।।

पूरब में अपने वैभव का—
वह प्यारा देश निराला - सा,
साभरण प्रकृति की गोदी में—
ले सुषमा का ज्यों सार लसा ।।७५।।

ऋषिवर, उसकी कुछ कथा दिव्य
अपने कानों तक आने दें
नर-भावों के जीवन-रस में—
मन का उन्माद डुबाने दें ।।७६।।

सुरपति की सुनकर बात सरस
मुनिवर धीरे से बोल उठे।
उन अमर जनों के कानों में—
भावों के अमृत घोल उठे ।।७७।।

"सहकार जहाँ अपनी रसता
पहले देकर साभार हुआ।
उस देश-भूमि में जीवन पा
उपकारी फलित रसाल हुआ ।।७८।।

श्यामा-विहार मुखरित स्वर से—
मोहक बासित मंजरियों में,
मधु-विलसित लीला प्यार भरी,
वह यहाँ कहाँ फिर परियों में ।।७९।।

आकर वसन्त फिर जाने में—
रस-भाव हृदय को दे जाता।
वह सदा एकरस रहने से—
सुरपुर में कभी न मिल-पाता ।।८०।।

परिवर्त्तन के छवि-परदे में
लीला बहार जो दिखलाती—
मन की चल लहरित धारा में,
वह यहाँ कहाँ फिर मिल पाती ?।।८१।।

ऋषियों की तपोभूमि भारत
जिसमें वह ज्ञान-किरण उतरी
मानवता तजकर अंधकार
जिससे जीवन में ज्योति भरी ।।८२।।

धरती का समाचार सुन्दर,
शुचि शान्ति चतुर्दिक व्यापमान
मंगल में मंगल उमड़ रहा
करता जीवन-हित मोद-दान ।।८३।

छवि ज्ञान तपस्या शान्ति शौर्य
सबकी श्री केन्द्रीभूत हुई
भारत में सहज विराजमान
श्रद्धा के बल अभिभूत हुई ॥८४॥

उस देश दुलारे भारत की
नैसर्गिक अलग कहानी - सी ।
सुन्दरता अपनी कला लिये
ज्यों रूपवती होकर विकसी ॥८५॥

उस भू के वर भूपाल सभी
जा रहे विदर्भ-राज्य सजकर
उस भीमसुता दमयन्ती के—
शुभ जान स्वयंवर का अवसर ॥८६॥

जिसकी सुन्दरता त्रिभुवन में—
यौवन–विकसित विख्यात आज ।
ऊषा-सन्ध्या के भावों में—
मिल सका जिसे मधु-ललित साज ॥८७॥

जयमाला कर लेकर होगी
वह बाला आप निराली-सी
शोभा के कलित सरोवर में
तिरती नव दिव्य मराली-सी ॥८८॥

उसको पाने की चाह न हो
भू पर वह कौन नृपति होगा ?
वर लाभ त्याग कर नयनों का—
वह दर्शक कौन विरति लेगा ?" ॥८९॥

सुनकर नारद की बात सरस
मोहित-से सुर कुछ सोच पड़े।
सुन्दरता का अद्भुत चित्रण
उर अंकित कर क्षण मौन खड़े ।९०॥

सुरपति - मन पड़ा प्रलोभन में—
सुन अनुपम रूप कामिनी का।
अब सोच - निरत, कैसे पाऊँ
तन - भोग सुहंस - गामिनी का ॥९१॥

तन-भोग मात्र का स्वार्थ जिसे
पद पाकर तनिक न लाज उसे,
मन में बस चिन्ता एक यही
कैसे भौगिक सुख - साज फँसे ॥९२॥

चलने को तत्पर इन्द्र हुआ
तब समझ-बूझ कर समय - साज।
शृंगार - कहानी सुनकर यह
मन में अति लिप्सा जगी आज ॥९३॥

तब अग्निदेव भी बोल उठा,
"मैं भी तत्पर हूँ चलने को,
जागरण भाव का जान सकूँ
निज शक्ति-परीक्षा करने को" ॥९४॥

तत्पर फिर वरुण देव सोचा,—
धरती का वह कैसा पानी?
स्वर्गिक भोगों को भूल जहाँ.
सुर-राज जा रहा अभिमानी ।९५॥

बोला, "चल देखूँ सृजन-कला,
इच्छा यह हुई समझने की,
उस पानी की कैसी शोभा,
यह शालीनता परखने की ॥९६॥

समोहन का पानी देखूँ
सौन्दर्यमयी दमयन्ती में,
आकर्षण की वह विभा दिव्य
तन-बीच फलित कुलवन्ती में" ॥९७॥

कुछ सोच-समझ कर धर्म-देव
तब बोल उठा तत्परता में,
"मै भी देखूँ शृंगार-कला
धरती की भाव-सफलता मे ॥९८॥

देखूँ चल उस सुन्दरता में—
क्या समुचित विकसित धर्म-विभा
शुचि परम प्रेम पाने वाली
क्या छिपी हुई उसमे प्रतिभा ? ॥९९॥

जीवन मे राह-संगिनी बन
क्या दे सकती है शान्ति-सुधा,
सेवामय दिव्य समर्पण मे—
जिस पथ होती पावन वसुधा ? ॥१००॥

सचमुच जग-नारी-रत्नों से—
जीवन का शुभ शृंगार चला
प्रेमी पथिकों को व्यथा भूल
जिसमें मिलती पथ-शान्ति-कला ॥१०१॥

सर्वस्व समर्पित करने की—
क्या जान सकी है प्रेम-राह,
जिसमें न कहीं बच पाती है
लेने की अपनी तनिक चाह ? ॥१०२॥

अन्दर-बाहर मृदु शान्तिमयी
मानवता मे आ ढली हुई
अपनी-सी शोभा वाली वह
नव ललित कला में पली हुई ॥१०३॥

यौवन में अपने लाज भरी—
मोहकता का स्वर भरती-सी
तन-मन-विकास की लहरों से
जीवन को लहरित करती-सी ॥१०४॥

ऐसी यदि सचमुच दमयन्ती
अनुपम धरती पर आयी हो
सुन्दरता मे कोमलता का
मृदु मधुर राग भर लायी हो ॥१०५॥

मै भी तब चलकर पाऊँगा
झाँकी उस कलित स्वयंवर की,
बाला की नव सौन्दर्य-विभा
प्रतिफलित छटा पर श्री वर की ॥१०६॥

लग गये स्वयं तत्परता में
इस भाँति देव कर बात चार,
सुरराज, वरुण सँग अग्नि, धर्म
प्रत्याशी बन ले नव विचार ॥०७॥

यों बात चला कर सुरपुर में
अपने पथ पर ऋषिराज चले।
भावों में अमर-राग कल्पित
वीणा में निज स्वर्गिक स्वर ले ॥१०८॥

धरती पर चारों ओर हवा
चल रही स्वयंवर की केवल।
दर्शक बनने का भाव जगा
नारद के मन में सुखद प्रबल ॥१०९॥

जगमग कुण्डिन पुर की शोभा
अपने में आप उमड़ती - सी।
ऊपर से पहुँची मुनि-वीणा
अनुपम सुराग-स्वर भरती-सी ॥११०॥

स्वागत की समाँ अलौकिक थी
अति सजी स्वयंवर भूमि-पास,
नाना रूपों में प्रकटित ज्यों
बर साज भर रहा मधु-विलास ॥१११॥

पहुँचे राजागण सजधज कर
निश्चित सुवास-थल ललित जान।
हर सुविधा से सत्कार स्वयं—
जैसे तत्पर कर कीर्त्तिगान ॥११२॥

आये धरती पर देव उतर
अपनी - सी सरस लालसा ले,
पर आपस में वे निर्विरोध
सद्भाव - भरी ममता वाले ॥११३॥

राजा नल से पथ-बीच मिले,
प्रशिनल थी जिसकी सुन्दरता।
सुर चौक गये लख आज यहाँ
धूमिल अपनी स्वर्गिक क्षमता ।।११४।।

ऐसा सुन्दर नर धरती पर
कैसे जीवन लेकर आया,
सुर-राज न अपने भावो से—
छवि का स्वर-ताल समझ पाया ।।११५।।

नीचे से ऊपर अग-अग
सुन्दरता सहज छलकती-सी
मुस्कान-भरी आभा मोहक
मुख-मंडल-बीच झलकती-सी ।।११६।।

शोभा-सर-चलित तरंगो-सी
अति सुघर भुजाये हिलती थी
अम्बर—श्री जैसे उतर-उतर
उनसे नन्दित हो मिलती थी ।।११७।।

वक्षायत साहस–शौर्य–भरा
नाहर का जी भरने वाला।
छवि-साँचे में ढालित-सा तन
यौवन-विकास में मतवाला ।।११८।।

सुर सोच पड़े, इसके आगे—
वह कौन स्वयंवर का भागी ?
क्या नल है, जिसपर दमयन्ती—
की प्रीति सहज ही है जागी ? ।।११९।।

नारद ने जिसका प्रेम-भाव
सुर-पुर में कह कर समझाया,
जग-विदित प्रचारित सुन्दरता—
का कथन दिव्य था कर पाया ॥१२०॥

सहमे से पूछ पड़े नल से
"भाई, परिचय निज बतलाना
किस देश राज की श्री वाले
इस पथ क्यो आज हुआ आना? ॥१२१॥

सद्भावपूर्ण अति नमित भाव—
से परिचय नल ने बतलाया।
"वर का प्रत्याशी बन आया"
सुन्दर शैली में समझाया ॥१२२॥

आशा उनकी डगमगा उठी
जब उठी निराशा अन्तर से,
सुर-राज लाज की हँसी लिये
लालचवश बोला ऊपर से ॥१२३॥

"हम है प्रत्याशी देव चार
यह भी मन में तव ज्ञात रहे।
चारों में चाहे जो वर हो
तब देव-लोक की बात रहे ॥१२४॥

जिस वैभव की हो चाह तुझे
हम देवों से मिलने वाला,
पर चयन करे हम में से ही—
मृदु प्रेम-भरी-सी वह बाला ॥१२५॥

अभिलाषा पूरी करने को—
नर-वर, तेरा सहयोग बने
बाला वह श्यामा मिले हमें
बन चलें सरस मन के सपनें” ॥१२६॥

बोला नल, यह तो बात ठीक,
पर जयमाला बाला के कर,
कर सकती है वह भाव सफल
उसका मन जम जाये जिसपर ॥१२७॥

यह तो उसकी अभिलाषा से—
मिल दैवयोग की बात रही।
होने वाला ही होता है
हम कर सकते क्या बात कही ? ॥१२८॥

फिर भी देवों का अनुनय तो
नर-शिरोधार्य ही हो जाता।
देवों के भाव-विरुद्ध भला
नर कैसे जीवन-सुख पाता ? ॥१२९॥

बाला से कैसे भेंट बने
यह तो मुझको कुछ ज्ञात नहीं
कैसे मैं उसको समझाऊँ,
असमंजस की यह बात रही ॥१३०॥

देवों ने देखा ध्यान-बीच
उपवन-विहार दमयन्ती का,
सन्ध्या ले संग आलियों का—
अति सुन्दर भाव आरती का ॥१३१॥

समझाया देवों ने उपाय
बाला के सम्मुख होने का,
निज दिव्य रूप के भावों में—
सुर - प्रेम - बीज उर बोने का ॥१३२॥

पहुँचे अपने निश्चित थल पर
भूपों का जहाँ जमाव - साज,
आतिथ्य - भाव सबको समुचित
देने में सफल विदर्भ-राज ॥१३३॥

देवों के साथ भूप नल का
कुण्डिन पुर में आगमन जान,
पुरजन - मन - भाव - सरोवर में
आशा-कलिका-हित उदित भानु ॥१३४॥

कल ही तो दिवस स्वयंवर का,
जन-जन में अति उत्साह मिला।
सूरज भी दिन भर भाव लिये
अस्ताचल पश्चिम - ओर चला ॥१३५॥

वह समय समझ कर नृप नल ने
देवों का शुभ सन्देश लिया,
सुर-कला जान कर अपने मन
उपवन में सहज प्रवेश किया ॥१३६॥

दमयन्ती मन्दिर के समीप
बालाओं के सँग टहल रही
पूजन औ दिव्य आरती की
वेला लखकर मन - चपल रही ॥१३७॥

कुछ ही दूरी पर निषधराज
सुर-वाक्य सोचता लख न सका,
वन की विकसित मधु लीला में—
उस समय न भाव मिला उसका ॥१३८॥

मधु - साज - सजे वन-वैभव में—
नूपुर - ध्वनि आयी कानों तक,
कोकिल स्वर की प्रतिस्वरता से—
कुछ निरख सका वह दृश्य उझक ॥१३९॥

देखा आशा के ऊपर अब
नव छवि थी उनमें रूप लिये।
किरणें तन परस बिछलती छन
विकसित शृंगार अनूप किये ॥१४०॥

उन बालाओं के आगे वह
दमयन्ती का ही भाव रहा,
आभरिता कुसुमकुन्तला, शुभ
पूजन-माला कर लिये, अहा! ॥१४१॥

सुनता था कानों से अब तक
पर आँखें सोच उदास रहीं।
अब आँखों के मृदु भावों में—
शब्दों को मिलती राह नहीं ॥१४२॥

किस भाँति कथन कर दे कोई,
सुघराई सहज छलकती - सी
लुक-छिप किरणें तन - परस-लीन
तन-श्री में वन-श्री भरती-सी ॥१४३॥

ज्यों काम - सरोवर में विलसित
लहरों से उमड़न पायी हो
तट पर पराग से क्रीड़ा कर
चढ़ काम-शरों पर आयी हो ॥१४४॥

हर अंग मधुरिमा का पानी
पाटल - चपलित झर झमक रहा
परिधान कलित, तन बसन विरल
कलरंगी स्वर में चमक रहा ॥१४५॥

कोमल किरणों के भावों में—
शशि-सी मुस्कान निखर पाती,
अधरों मे धर बन्धूक - कला
अपने में आप विलस भाती ॥१४६॥

लालित दुलार की यह बाला
हर भाँति मधुरिमा भरी हुई
छवि-रची कला-रस की काया
समुचित साँचे में ढली हुई ॥१४७॥

सपने में जिसको देखा था
वह परम रूपसी सरला थी,
आँखों के खुलने पर भागी
मन-मोह-कला की बाला थी ॥१४८॥

जिसकी सुन्दरता में पड़कर
मन मोह - गगन में उड़ पाया।
यह रूप वही, इस उपवन में
आँखों के सम्मुख सज आया ॥१४९॥

अन्तर - नयनों में रूप बसा
बाहर आखों से अब देखा,
धोखा न रहे, चिन्ता फिर भी
मन बार - बार करता लेखा ॥१५०॥

पर स्वप्न नहीं, यह सत्य रूप
जीवन - विलास की लीला का।
परिणाम - रूप देने वाला
व्यवहारजनित जग-मेला का ॥१५१॥

अपनी सुधि के जग - मेले में
यह रूप परम सुन्दरता का,
मिलने पर सचमुच दे सकता
सुख-भाव-विचार सफलता का ॥१५२॥

पर देवों का सन्देश मुझे
मिलकर उस तक पहुँचाना है
उसके मन का भी प्रेम - भाव
निज समझ - बूझ में लाना है ॥१५३॥

उस मधुर रूप के भाव मग्न
छवि - रूप - भक्त यह मन मेरा,
प्रारब्ध - राह धर भटक चला
डाला आ कहाँ सहज डेरा ॥१५४॥

यदि प्रेम सहज उसका भी हो
सद्भाव - सहित अपने ऊपर,
तब तो उलझन की बात नहीं
कोई न कही बाधा का स्वर ॥१५५॥

यदि बात कहीं अन्यथा रही
तब तो तत्परता ठीक नहीं।
अन्तर के भाव - विरोधों में—
जीवन - स्वर मिलता नहीं कहीं ॥१५६॥

देवों की लेकर ध्यान - युक्ति
बालाओं के ढिग जाऊँगा;
फिर न्याय - सहित सन्देश प्रथम
उनका ही मैं पहुँचाऊँगा"।१५७॥

यह कहकर आगे भूप बढा
ले संमोहन - व्यापार घना।
देवो की कृति - मति का सुयोग
नल के पथ का आधार बना ॥१५८॥

उस समय उधर बालाओं का—
मन्दिर की ओर प्रयाण रहा।
पावनता से शृंगार रूप—
का कैसा सुन्दर मेल, अहा ! ॥१५९॥

तव तक कल कुसुमित कुंज-बीच—
नल दीख पड़ा आकर्षण से
छवि - सेवित यौवन - नर - तन में
झिलमिल किरणों के वर्षण से ॥१६०॥

भोली बालायें चौंकी - सी
कानाफूसी कर ठमक पड़ी।
सहसा कुछ समझ न बन पायी
क्षण मंत्रमुग्ध - सी हुईं खड़ी ॥१६१॥

वीरुध पत्तों की ओटों से
तब तक नल सम्मुख हो आया।
छविमयी सौम्यता खेल रही
जैसे पाकर मोहक काया ॥१६२॥

नल ने देखा दमयन्ती को
दमयन्ती ने देखा नर-वर।
रूपों का अनुपम लेन - देन
नयनों का बना सहज सबल ॥१६३॥

नयनों के पथ वे रूप पहुँच
आसीन हृदय के आसन पर।
सुधि भूल गयी दोनों को क्षण
सुन पड़ा कौन-सा भीतर स्वर ? ॥१६४॥

दोनों की रूप - कल्पनाओं—
के साँचे ज्यों भरपूर मिले।
वाणी की गति भी बन्द हुई
मन के मुरझाये भाव खिले ॥१६५॥

बालाओं ने देखा अद्भुत
नर-रूप आज निज आँखों से।
नयनों मे बसने योग्य, अहा !
क्या कथन बने मुख लाखों से ? ॥१६६॥

भर शौर्य सजीले कंधों पर
बल - सार घुमडता चलता - सा।
वक्षायत विकसित बाँहों में—
साहस श्रृंगार उमड़ता - सा ॥१६७॥

उरु भरित भाव वसनों को दे
छिप कर मृदु झलक दिखाते थे,
मधु काम-कला के भावो में—
आगे - पीछे गति लाते थे ।।१६८।।

लावण्य भरे उस आनन में
भावो का जादू खेल रहा,
मृदु मौन कला के दर्शन पर
नयनों से करता मेल रहा ।।१६९।।

बालायें मोहित भावों से—
अति नम्र प्रदर्शन कर भायीं ।
शालीन सुघर मृदु मुद्रा में—
नल के समीप तब हो पायीं ।।१७०।।

सखियों का पा सकेत सहज
सहमी - सी दमयन्ती बोली,
ज्यों भरी मधुरिमा की पेटी
मुख-स्वरित कुंजिका से खोली ।।१७१।।

“संकोच पूछने में होता
हे, नर - वर ! है वह कौन देश,
जिससे शुभ तव आगमन हुआ
लेकर नर-पुगव का सुवेश ? ।।१७२।।

सन्ध्या की पूजन - बेला में
आने का वह निश्चय क्या है ?
नर - देव ! बतायें निश्छल हो,
सचमुच अपना परिचय क्या है? ।।१७३।।

प्रतिबन्धित शोभित उपवन में—
कैसे आगमन हुआ अपना ?
तव सौम्य रूप कैसे पहुँचा ?
क्या देख रही है हम सपना ?" ॥१७४॥

श्रवणों में पड़ कोमल वाणी
अन्तर में जाकर रसित हुई।
आशा के मोहक परदे पर
शृंगार-कला-सी खचित हुई ॥१७५॥

नृप मुग्ध सँभल कर बोल उठा
"हे देवि ! यहाँ क्या सपना है ?
मैं खड़ा एक मानव भोला
नल नाम निषध थल अपना है ॥१७६॥

देवों की कल करतूत लिये
प्रतिबन्धित उपवन में आया।
अपनी न कहीं प्रभुता इसमें
हे, देवि ! सुरों की यह माया ॥१७७॥

पायी पत्रिका स्वयंवर की
मन चाह हुई इस देश चला।
बन पथिक राह-गिरि-सरित नाँघ
आया सहकर पथ - जनित बला ।१७८॥

पथ-बीच वरुण सुर, अग्नि, धर्म
तीनों को ले सुर - राज मिला।
वह भी प्रत्याशी बन आया
सुर-त्रय क्यों पीछे रहें, भला ! ॥१७९॥

चारों के मन में चाह बनी
बाला दमयन्ती हो मेरी।
उनका अनुनय सदेश यहाँ
पहुँचाने को अपनी फेरी ॥१८०॥

सुर कामरूप प्रभुता वाले
उनके ढिग कहाँ अभाव रहा ?
सचमुच ही है वे चयन - योग्य
मधु - साज, अमर श्रृंगार जहाँ । १८१॥

चारों में चाहे जिसको भी
बाला सस्नेह चयन कर ले,
सुख-साज, मधुरिमा, वैभव से—
जीवन की निज झोली भर ले" ॥१८२॥

यह कह नल ने परिचय पूछा
बालाओं से धीमे स्वर में,
नय का स्वरूप शुभ जान पड़ा
मृदु बोली से अन्तर-तल में ॥१८३॥

आली परिहासा चुप न रही
मुस्कान भरी ममता वाली।
वाणी की छलकन मधुरस से,
दोलित ज्यों अधरों की लाली ॥१८४॥

"नर-वर ! जिसका जो हो आगा
उसका तो पहले मिलन बना।
सुन रहे नहीं उस कोकिल का —
पंचम स्वर है किस भाव सना ? ॥१८५॥

मधुपगी तितलियाँ नाच रहीं
उर भावभरी किस उत्सव में ?
भ्रमरों का 'गुन-गुन' गान बना—
सन्देश सफल मधु वैभव में। १८६॥

कोमल हरीतिमा में विकसी
सुमनों की लाली सस्मित-सी,
क्या कहती मौन भरे स्वर में
मादक उभार में विलसित-सी ? ॥१८७॥

कोमल कलिकायें पलक उठा
पाकर विकास क्या निरख रहीं ?
किन नयनों की मादक गति में—
प्रिय-मिलन-भाव-रस परख रही? ॥१८८॥

उनकी जो भाषा जान सके
तो परिचय हो पावन उर का।
अन्तर की सहज रागिनी से—
वह राग मिले मधुमय स्वर का ॥१८९॥

श्रीमान् आपको अब तक भी
वह बात न मिली सत्यता की ?"
आलीगण में नव भाव लिये
मुस्कान खिल उठी ममता की ॥१९०॥

फिर बोली, "हे नर-राज ! सुनें
हम सब हैं अन्तरंग आली।
पहले परिचय जिसने पूछा
रख दें उसके मुख की लाली ॥१९१॥

मेरी बोली उसकी समझें
यह बात सरल निश्छल स्वर की।
नर-नाथ, यही वह दमयन्ती
रचना जिस हेतु स्वयंवर की ॥१६२॥

हे, देव ! यही प्यारी आली
ढिग बात सरल मन से कर लें।
उसकी कोमल प्रिय वाणी का—
अन्तर - वीणा में स्वर भर ले ॥१६३॥

दमयन्ती मृदु मुस्कान लिये
भू - ओर, नमित - मुख, भूली - सी
तिर्यक मुख कर फिर निरख पड़ी,
उपवन रवि-सान्ध्य-कला विकसी ॥१६४॥

स्वीकार - भाव ज्यों रूप लिया
क्षण कोमल सरस प्रदर्शन में,
अब नयन - लाभ - सीमा - रेखा—
पर पहुँच चुका प्रिय दर्शन में ॥१६५॥

वह प्रश्न - पत्र मिल गया आज
जिसका उत्तर अपने मन का,
आशानुसार मिलने वाला
भरपूर अंक निज जीवन का ॥१६६॥

अन्तर की विह्वलता में रुक—
क्षण भर, राजा फिर बोल पड़ा,
"हे. देवि ! बात तो ठीक रही
फिर भी देवों का मान बड़ा ॥१६७॥

सन्देश लिये उनका आया
उनपर ही प्रथम विचार बने,
मेरा होगा सद्भाव साथ,
सुर भी तो हैं मेरे अपने ॥१९८॥

सुर कामरूप सुन्दरता की—
लीला अद्भुत रचने वाले।
धरती पर वह सुख-साज कहाँ
जो क्षण-क्षण सुख-छाया डाले ?" ॥१९९॥

यह अवसर कुछ कह देने का—
दमयन्ती को अब जान पड़ा।
सहमी - सी धीरे - से बोली
वाणी का कर सम्मान बड़ा ॥२००॥

"भूपाल, सुरों का अमर साज
मेरे जीवन का राज नहीं।
तव जीवन - गंगा जहाँ मिले
मम कृति-यमुना का साज वही ॥२०१॥

होगा अपना वह तीर्थराज
वाणी की धारा से मिलकर।
सम्पूर्ण यही मम ज्ञान - कला
इससे न अन्यथा हे, नर-वर ! ॥२०२॥

नर-नाथ, सुरों का अमर साज
खलने वाला ही बन जाता।
उससे जीवन का सहज प्रेम
अन्तर में कहाँ उतर पाता ? ॥२०३॥

सुख-दुख की रेखायें मिलकर
जीवन के सहज समर्पण में—
जो परम चित्र रच देती हैं,
वह कहाँ सुलभ सुर-जीवन में ॥२०४॥

कर्त्तव्य यहीं का किया हुआ
सुरपुर में फल दिखला पाता।
सत्कृति के फल से सुख पाकर
नर-लोक पुनः नर आ जाता ॥२०५॥

देवों को रहती ललक यही
नर-लोक-बीच शुभ जीवन हो,
पाकर स्वरूप का ज्ञान सहज
अपने को पाकर पावन हो ॥२०६॥

अपने मन की तो बात यही
सुन्दर जो लगती अपने को,
इन चरणों पर सब कुछ रखकर
तव हित देखूँ जग - सपने को ॥२०७॥

हे, देव ! न हिचक बने मन में
मैं सुमन प्रेम का भेंट करूँ
मेरे उर-भाव आप के हों
चरणों पर उन्हें समेट धरूँ" ॥२०८॥

वाणी के कोमल कम्पन से
अन्तर-दोलित नल मुदित हुआ
मानस की सुमनिल लहरों पर
ज्यों प्रेम-बाल-रवि उदित हुआ ॥२०९॥

छवि-मोहकता के सगम पर—
जीवन-गति-भाव मिलाता - सा
अवसर लखकर फिर बोल उठा
लज्जा का भाव दिखाता-सा ॥२१०॥

"हे, देवि ! मुझे क्या हिचक रही,
तेरे मन में जो भाव बना,
उस पर अधिकार मात्र तेरा,
कह सके कौन उसको अपना ? ॥२११॥

तेरा अनन्य वह प्रेम सहज
किस पथ होकर चलने वाला,
उसको तो स्वयं जानती हो
फिर अन्य कौन लखने वाला ? ॥२१२ ।

अपना हो जैसा भाव बना
कर सकती हो भोली बाले !
सन्ध्या की पूजन - बेला में
मन में तव कौन विघ्न डाले ? ॥२१३॥

पहले सब मिलकर एक साथ
मन्दिर में जा पूजन कर ले ।
श्रद्धानुसार विश्वास - लाभ—
कर मशा की झोली भर लें ॥२१४॥

मैं यहाँ बैठ कुछ क्षण बाले !
कलरव, खग - साज निरख पाऊँ,
सुमनों से विलसित उपवन में—
कोकिल-स्वर-भाव परख पाऊँ ॥२१५॥

स्वर-भावित चंचरीक 'गुन-गुन'
मादक स्वर में क्या कह पाता ?
परियों-सी चपल तितलियों को—
मृदु राग-रंग क्या समझाता ? ॥२१६॥

बाले, सम्मुख उस डाली पर—
कर रही परेई क्या सलाह ?
प्यारे निज शान्त परेवा से—
कैसी दर्शाती प्रेम - राह ? ॥२१७॥

मुस्कान मृदुल कलियाँ बिखेर
खिल सुमन-भाव में क्या कहती ?
विकसित अन्तर निज खोल सरस
देखूँ क्या आवाहन करती ॥२१८॥

कहती हो सत्य, समझ लूँगा—
मन में इस प्रकृति - व्यवस्था से ।
पूजन कर लें, तब तक समझूँ
भावी पथ स्वस्थ अवस्था से" ॥२१९॥

सखियों ने देवी - पूजन में—
सद्भावपूर्ण निज ध्यान दिया,
पूजन के पहले ही जिसने
उनके भावो को मान लिया ॥२२०॥

देवी के सम्मुख आज नयी
आशा की अद्भुत ज्योति मिली
पावन वन्दन में आज मग्न
कुछ समय हुई नर-पाल-लली ॥२२१॥

अन्तर - रेखा दीपित होकर
देवी से भाव मिलाती - सी
जगमगा उठी अनुपम बनकर
अम्बर के स्वर में आती-सी। २२२॥

अम्बर - वाणी सुन पड़ी उन्हें
कानों को शीतल करती - सी,
'मशा निश्चय पूरी होगी'
यह भाव हृदय में भरती - सी। २२३॥

"बाले! वह विजय तुम्हारी है,
जिस पर मन को आधार बने,
अन्तर - धारा के संगम पर
भावों को नव संसार बने॥२२४॥

बाधा तो मात्र परीक्षा है
बस, प्रेम - राह में, फल वाली।
श्रद्धा की गति - पावनता ही—
पाती विश्वासमयी लाली॥२२५॥

यों कह नभ - वाणी शान्त हुई
दमयन्ती को आसार मिला।
सखियों के तरित - थकित मन को
सन्तोषपूर्ण आधार मिला॥२२६॥

वाणी का अपने भावों की—
वन्दन - विधि से सत्कार किया।
आते - जाते सन्देहों को—
मानस - रेखा से पार किया। २२७॥

पूजन, नीराजन कर सभाव
मृदु - भावों को मन में समेट,
लेकर प्रसाद - लौ नृप समीप
आयीं करने शुभ सुमन-भेंट ॥२२८॥

नल के समीप गति बनी मधुर
फिर प्रेम-भरी बालाओं की।
भावों की कलियाँ खिली मुदित
किरणें पाकर आशाओं की। २२९॥

पाकर प्रसाद - लौ जीवन में—
वह पहली बार निहाल हुआ।
अब तक तो वह भूपाल रहा
अब प्रेम-भरित उर-पाल हुआ ॥२३०॥

कर विकसित सुमन गुलाब लिये
सहमित बाला नल-पास गयी,
अन्तर-स्वर-तार मिलाने को
छवि - वीणा - सी शृंगारमयी ॥२३१॥

मन के उद्गारों से श्रम पा—
प्रस्वेद मृदुल तन स्रवित हुए।
शशिमणि दोनों के हृदय आज
मुखचन्द्र-सुधा-छवि-द्रवित हुए ॥२३२॥

हर अंग मधुरिमा के साँचे—
में राग नवल मृदु भरता-सा,
कोमल अञ्जुलि में सुमन धन्य,
उपमान-चुनौती करता - सा ॥२३३॥

कर-पल्लव में शुचि सुमन आज
सहिदानी के स्वर विलस रहा,
सस्मित मुख-शशि-छवि-कला निरख
नव राग-रंग में विहँस रहा ॥२३४॥

चपला ज्यों शशि से मिली आज
कल कुसुमरूप उर सार लिये,
मधु-राग-अंक की आशा से—
सज्जित मोहक शृंगार किये ॥२३५॥

नल रोक न पाया अपने को
कोमल अञ्जुलि आगे कर दी,
जिसमें बाला ने सुमन - रूप
नव भावों से आशा भर दी ॥२३६॥

सस्मित - से युगल सलाज - भाव
नयनों के चार विचारों में,
आशा की चपला चमक उठी
यौवन - घन के शृंगारों में ॥२३७॥

भावों की चमकीली डोरी
नयनों के कर उर बाँध सकी,
वह दमक मधुर आभा वाली
भ्रम-अध-तमः पथ नाँघ रुकी ॥२३८॥

वाणी की गति अवरुद्ध जान
परिहासा धीरे - से बोली,
निश्चय की बन्द पिटारी ज्यों
मृदु कथन-कुञ्जिका से खोली ॥२३९॥

"हे, आर्य ! आज का ही निश्चय
मेरी आली का जीवन-बल
पर मर्यादा लौकिक रख दें—
शुभ सजे स्वयंवर में आ कल ॥२४०॥

आली-कर की शुभ जयमाला
उर-भ्राजित सहज सनाथ करें,
फिर अपने विकसित हाथों से
आली के कोमल हाथ धरें" ॥२४१॥

यह सुनकर नल-दमयन्ती के—
मुख-देशों पर मुस्कान चली,
छवि-कला-केन्द्र-द्वय पा नर्त्तित
ज्यों भावित हो घन-विभा-लली ॥२४२॥

"प्रेमाश प्रार्थना बाला की,
मेरी भी होगी तत्परता।
उसके निश्चय की रेखा वह
छू सके कौन-सी असफलता" ॥२४३॥

वह प्रेम-पूर्ण शुभ मिलन रहा
यौवन - बहार में खिलता-सा,
विकसित वसन्त के नर्त्तन में—
स्वर - ताल कलित ले मिलता-सा ॥२४४॥

राजा ने शुभ संकेत किया
आशा लेकर घर जाने का।
अपने निश्चय का भाव दिया
कल प्रात स्वयंवर आने का ॥२४५॥

नृप बोला, "हे बालाओ, अब
अपने वितान - थल जाऊँगा।
मंडप-श्री सजे स्वयंवर में—
मैं उचित समय पर आऊँगा ॥२४६॥

अब एक साथ मिल घर जाओ
देखो, सन्ध्या - वेला आयी,
मोहक सुरंग ले अम्बर से—
अनुराग जनित स्वर भर लायी ॥२४७॥

जग की कलरंजित मधु लीला
क्षण भर मज्जित अरुणाई में,
रवि निरख-परख ज्यों डूब चला
भावो की निज गहराई में ॥२४८॥

दिन भर जग-लीला देख सहज
रवि ने अस्ताचल पार किया,
सन्ध्या की लाली छोड़ सुघर
आगे पथ का आधार लिया ॥२४९॥

अपनी कलरंगी आशा में—
वह अस्ताचल पर रुक भोली—
सन्ध्या अब खड़ी विचार रही
कर ले सिन्दूर - भरी झोली ॥२५०॥

उससे लेकर सिन्दूर दिव्य
वह माँग भरित किसकी होगी
किन हाथों में वह हाथ किये
उर-स्नेह-सार किसको देगी ?" ॥२५१॥

परिहासा सस्मित-सी बोली
"सिन्दूर दिव्य निज कर धर दें
अवसर आने पर आली की
शुभ माँग कलित कर से भर दे" ॥२५२॥

क्षण भर वह हास-विनोद-भाव
रसमयता का आधार बना,
आशा – सरिता – संतरण – समय
नव प्रेम-पुलिन-संभार बना ॥२५३॥

कर वन्दन और नमन समुचित
बालायें निज घर-ओर चलीं।
मन के साँचे में ढली हुई
नृप-नयनों को अति लगीं भली ॥२५४॥

कैसे उनके उपमान बनें
स्वर्गिक सुरचित तन परियों के ?
चन्द्रिका-निमज्जित घन-वन में
क्षणप्रभा सदृश तन ललियों के? ॥२५५॥

नृप सोच न पाया, क्या विधि की—
रचना भी ऐसी हो पाती,
जिसमें वसन्त—श्री डूब-तिरे
मधुमय विकास में मदमाती ? ॥२५६॥

कोयल क्या फिर अब बोलेगी
इस सुमन-भरे कल-दावों से ?
ऐसा उपवन-विहार फिर क्यों—
रुनझुन नूपुर-स्वर भावों से ? ॥२५७॥

मधुमास - कला जीवन - रस की
छवि - नर्त्तन में स्वर - तालवती,
प्रकटित वैदर्भी के स्वरूप
वगराती श्री क्षण-क्षण लगती । २५८॥

राजा नल मोहित भावों से—
सुधि भूल गया छवि - अंकन में ।
यकतार निरखता खड़ा रहा
उमड़ित क्षण-क्षण नवता तन में ॥२५६॥

बालाओं ने मुड-मुड़ देखा
नृप - तन-छबि सुघर निराली-सी,
नयनों से पीने योग्य, अहा !
सौन्दर्य - सुधारस - प्याली - सी ॥२६०॥

तन का सुढार संभार, अहा !
किस रमणी को न विकल कर दे
यौवन - विकास मे लहरित वह
नव तन-श्री कहाँ न रस भर दे ? ॥२६१॥

चलते - से मोहन - वाण रहे
तन - छवि - भावों के उर-थल से
यद्यपि वह सधि - मिलन निश्चित
फिर भी प्रहार अन्तर-बल से ।।२६२।।

पथ में शोभा बगराती नव
चल पड़ी कुमारी भोली - सी,
आशा-घन में कल कौधमयी
दीपित चपला की डोरी - सी ।।२६३।।

दोनों फिर एक दूसरे की—
छवि अन्तर - पट पर अंकित कर,
निज - निज पथ - गामी हुए घूम
कुछ समय-शिला पर विरचित कर ॥२६४॥

निशि - वेला का चिन्तन - भावन
कल्पित पथ का आधार बना
नल दमयन्ती के सपनों में—
कौतूहल का उद्गार बना ॥२६५॥

स्वयंवर-सर्ग

सपनों की अपनी लीला रच
प्यारी रजनी अब बीत चली।
ऊषा झाँकी मुस्कान भरी
ज्यों पा निकली शृंगार-गली ॥१॥

अरुणाई का जादू लेकर
रविमंडल आज निखर पाया
जग की लीला में थिरक उठी
नर्त्तन कर किरणों की माया ॥२॥

प्रात: फिर धूम मची अनुपम
वह चहल-पहल लग और रही।
शुचि साज स्वयंवर-भावों का—
अब निरख हुई अति धन्य मही ॥३॥

अपने-अपने शृंगार-साज—
में भूप सभी थे लगे हुए।
प्रत्याशी बनकर आये जो
आशा के मधु में पगे हुए ॥४॥

विधिवत मंडप के बीच हुआ
फिर पूजन, हवन, दिव्य वन्दन।
शुभ शंखनाद गुरु गहन हुआ
आवाहन-हित देकर निस्वन ॥५॥

लेकर समाज फिर आ पहुँचे
नृप अपनी नव तत्परता से।
समुचित आसन पाकर बैठे—
निज गौरव की सुन्दरता से ॥६॥

वह भव्य प्रदर्शन अति सुन्दर,
ज्यों शालीनता स्वरूप धार
नाना तन धर छविमयी हुई
दिखलाती-सी शृंगार द्वार ॥७॥

सज देव अलौकिक आसन पर
होकर सत्कृत आसीन हुए।
कल कामरूप माया वाले
सुन्दर छवि धरे नवीन हुए ॥८॥

वह पास सुसज्जित आसन था
आ जहाँ विराजित निषधराज,
जिसकी आगमन-विभा से खिल
जगमग मंडप के कलित साज ॥९॥

भूपाल चमत्कृत क्षण भर सब
वह रूप निरख नर-पुगव का।
नर-रूप कलित अनुपम झाँकी—
में सार फलित ज्यों उत्सव का ॥१०॥

ऐसा सुन्दर नर-रूप अहा!—
आँखों का विषय न बन पाया।
वह देश, काल, कुल धन्य हुआ
जिसमें पोषित ऐसी काया ॥११॥

सबकी आँखों में रूप वही
नर्त्तित चिन्तन - सर - लहरों पर
लहराता सस्मित जान पडा
बढ़ता फल-हेतु पुलिन पर वर ॥१२॥

चिन्तित अति चकित देव सहमित
नृप के स्वरूप शृंगारों से ।
सुर कामरूप, पर देख विकल
समता मे न्यून विचारों से ॥१३॥

देवों के मन में बात जँची,
"हम भी नल का स्वरूप धरलें,
अपनी दैवी सुन्दरता से—
बाला का मन कंपित कर लें" ॥१४॥

होती लख हार होड़-थल पर
नल - रूप - नकल सुर धार रहे ।
जो कामरूप माया वाले,
बस यही यत्न बाकी उनमें ॥१५॥

फिर भी असमंजस और बड़ी
बाला भ्रम मे किसको होगी ?
चौकी - सी निर्णय क्या लेगी,
जीवन का दाँव किसे देगी ? ॥१६॥

चारों देवों के रूप कलित
नल के समान ही भ्राजमान ।
अब रूप कौन वह किसका है,
इसका न सहज हो सका भान ॥१७॥

सुर-वर नर-वर की सुन्दरता—
लख सहम गये मन हार मान।
आशा की रेखा दूर हुई
मंशा का दाँव अलभ्य जान ॥१८॥

फिर भी देवों की माया तो—
भीतर से कैसी हो पाती ?
नर - लक्ष्य - सिद्धि की बेला मे—
नाना रूपो में बहकाती ॥१९॥

नर रहा अडिग तो देव द्रवित—
आशीर्वचन देने वाले।
जैसे वे मात्र परीक्षक हों
पथ अन्त सफल करने वाले ॥२०॥

तब तक उद्‌घोषक बोल उठा
भूपालों को इंगित करता,
आकर्षण की निज बोली मे—
भावी विचार का रस भरता ॥२१॥

"प्रत्याशी निज-निज थल होयें
दर्शक-जन हों अपने थल में,
दमयन्ती अब आ रही यहाँ
जयमाला लिये स्वयंवर में" ॥२२॥

वह सभा चमत्कृत, सावधान,
पथ लगी निरखने बाला का,
वह विश्व-सुन्दरी कैसी है,
वह प्रेम-भाव क्या माला का ? ॥२३॥

तब तक मंडप ही दमक उठा
अम्बर ज्यों क्षण-छवि होने से,
बाला सखियों-सँग दीख पड़ी
दामिनी-विभा-सी कोने से ॥२४॥

आगे चलती वह दमयन्ती
जयमाला शुभ मोहक कर ले,
दर्शक-दल के मन डूब तिरे—
छवि-भावो के सर-पाथ मिले ॥२५॥

सखियों ने था शृंगार किया
समुचित सुवस्त्र आभरणों से,
अपने में सज्जित छवि-कलिता
फिर भाव और उपकरणो से ॥२६॥

कल कंगन सरव किंकिणी से—
मिलकर नूपुर-ध्वनि-तालो पर,
लयबद्ध गान सखियों से पा—
माला में देता कम्पन भर ॥२७॥

सब अंग मनोहर अपने में—
मृदु मौन कहानी कहते-से
लहरित ज्यों काम-सरोवर मे—
सुमनों के स्वर में हिलते-से ॥२८॥

यौवन-विकास के अंग सुघर—
सम्मोहन वाण चलाते थे,
भूषण-वसनों में लुका-छिपी—
कर मधु-सिंगार दर्शाते थे ॥२९॥

वह सुमन - कुन्तला गन्धवती
अलिभावों में नयनों को कर,
होगी किस पर अब रागवती
मकरंद महाछवि तन में भर ॥३०॥

घन केश - राशि लख नृप-नयनों—
के भाव शिखी - सम हो पाये,
मन की मोहक हरियाली पर
नर्त्तित - से छटा निरख भाये ॥३१॥

छवि आनन में कमनीय कलित
नयनाभिराम कलना मन की।
चितवन में मादक प्यास भरी
सस्मित द्विज-पाँति दमक घन की ॥३२॥

आलीगण के आगे बाला
जयमाला कर में लिये लसित,
मन्थर गति में छवि - छलकन से
होते नर - भाव सहज विचलित ॥३३॥

प्रिय प्रेम - प्रशिक्षण ले जैसे—
शृंगार - लोक से आयी हो,
वस्त्राभूषण की छटा साथ
छवि - सार सुतन भर लायी हो ॥३४॥

परिचय में आने लगे भूप
परिचायक के कोमल स्वर में,
दमयन्ती निरख परख बढ़ती
नैराश्य छोड़ पीछे दल में ॥३५॥

कह सके कौन छवि भाव वहाँ
शोभित नव हंस - गामिनी का।
आगे कलकौंध, पात पीछे
उल्टा व्यापार दामिनी का ॥३६॥

बाला के बढ़ते जाने में—
कौतूहल जैसे झाँक रहा।
दर्शक - दल भी वह चयन - रूप
टकटकी लगाये आँक रहा ॥३७॥

तब तक दमयन्ती ने देखा
तन - श्री - विकास अनुपम नर का,
उपवन में जिसको चयन किया
देकर सद्भाव - सुमन वर का ॥३८॥

दमयन्ती क्षण भर निरख रुकी
मृदु चपल चमत्कृत आँखों से।
अन्तर में उसे निवास दिया
वह रूप अलग कर लाखों से ॥३९॥

बालाओं ने भी रुक देखा
अवसर का दाँव हाथ अपने,
आशामय रचित विचारों के—
पूरित होने वाले सपने ॥४०॥

दमयन्ती मन की रचना में—
भावों की रेखा खीच रही,
यौवन - स्वभाव, छवि - रंजन में—
क्षण पड़ी मोह के बीच रही ॥४१॥

तब तक जैसे रस भंग हुआ
परिचायक परिचय दे न सका।
लख निषध - राज के पाँच रूप
समरूप निरख माथा ठनका ॥४२॥

सखियो ने भी जब देखा तो
यह बात समझ में आ न सकी,
आश्चर्य भरे जादू की - सी
यह दीख पड़ी माया किसकी ? ॥४३॥

सुख के सपनों से जागी तो
मुड़कर दमयन्ती ने देखा,
सुख-भरी ललक की आँखों में—
क्षण नाच उठी चिन्ता - रेखा ॥४४॥

समता के ऐसे रूप बने
फिर भेद - भाव कुछ हो न सका।
देखा, सोचा—यह चमत्कार !
इसमे क्या राज भरा किसका ? ॥४५॥

पर बात तुरत वह ताड़ गयी,
यह रही सुरो की ही माया।
वे कामरूप क्षमता वाले
रच लेते क्षण भर मे काया ।४६॥

गुरु हंसराज को याद किया,
अन्तर - प्रेरित नव भाव जगे,
जैसे कोई समझाता हो
"मत चिन्ता कोई कर सुभगे !" ॥४७॥

असमय की दूभर बेला में—
धीरज को सदा सहायक कर,
चलता जो समझ विवेक सहित
होता है वही सफल पथ पर ॥४८॥

देवों का ही वन्दन कर ले
वे ही शुभ राह बतायेंगे,
अपने स्वरूप फिर प्रकटित कर
रक्षक तेरे बन जायेंगे ॥४९॥

अमरों के लक्षण उनपर जब
अपनी आँखों से देख सके,
अपने विवेक से स्वयं जान
तब सफल परीक्षा में उनके" ॥५०॥

दमयन्ती ने तब हाथ जोड़
उन देवों का क्षण ध्यान किया
पावन बन्दन मन से कर फिर
सद्भाव सहित सम्मान दिया ।५१॥

देवों ने देखा, वैदर्भी—
कातर स्वर में कुछ बोल रही,
उसकी उस सकरुण चितवन में—
भावों की व्यथा अमोल रही ॥५२॥

"देवों से मुझे न आशा थी—
होंगे वे कभी प्रेम-बाधक ।
लेते है खरी परीक्षा जो
होते फिर सहयोगी साधक ॥५३॥

हे, देव! कथन क्या सत्य नहीं
या देख रही हूँ मैं सपना?
सचमुच ही बाधक आप बने
या मुझमें ही है भ्रम अपना?"॥५४॥

दमयन्ती के उन भावों का—
देवों ने भी सत्कार किया।
निज रूप प्रकट कर भाव-सहित
सुर-रूप कलित आकार किया॥५५॥

अमरों ने आशीर्वाद दिया
"तेरा मंगल निश्चय होये,
प्रिय का तुझको सौभाग्य मिले,
तेरी ही आज विजय होये"॥५६॥

सुरराज समाज सहित अपने
निज देवरूप का दिया भास।
मंगलमय वातावरण बना,
सुन्दरियों ने ली सुखद साँस॥५७॥

बाला ने देखा देव-भाव,
उनकी न रही छाया बनती,
पद भूमि नहीं कर परस रहे
पलकें न मनुज-स्वर में झँपती॥५८॥

हाथों के सुमन रहे ताजे
मक्षिका न वहाँ पहुँच पाती।
पहचान हुई उन देवों की
आशा की राह मिली आती॥५९॥

फिर देखा बालाओं ने मुड
नल के सस्मित मृदु भावों को।
दमयन्ती निरख सभाव रुकी
भूली क्षण सकल व्यथाओं को ।।६०।।

नयनो की ज्योतित रेखा में—
अन्तर का प्रेम - प्रकाश मिला,
वह कौंध कि जिसमें आशा के—
मधुमिलन - राग का सुमन खिला ।।६१।।

अन्तर - उद्‌गार फलित रूपित
निर्मल यदि सम्मुख आ जाये,
निश्छल जीवन की राह पकड़
शुचि प्रेम-लोक तक पहुँचाये ।।६२ ।

वह प्रकट रूप में दीख पड़ा
दर्शक जन निरख निहाल हुए
उस सफल युग्म की रचना लख
विस्मित अति सब भूपाल हुए ।।६३।।

देखा बाला ने बार - बार—
नल का सुरूप, जो अब अपना।
दुख की माया मिट चली सहज
अब कहाँ रहा भ्रम का सपना ? ।।६४।।

सहिदानी का वह फूल मृदुल
कुछ - कुछ मुरझाया जान पड़ा,
अपने कर का जो दिया हुआ
निज निश्चय से पहचान पड़ा ।।६५।।

मोती - माला भी झलक पड़ी
बाला ने उसको देख लिया।
अपने विवेक से नर-वर के
लक्षण बिचार सन्तोष किया ॥६६॥

सन्देह वहाँ कुछ रहा नहीं
अब निषधराज के होने में।
माया की छलना दूर हुई
भग तमोलोक के कोने में ॥६७॥

परिचायक ने बतलाया फिर
"हे, देवि ! यही है निषधराज,
राजा नल, जीवन - भाव - भरे
पर दुष्ट-दलन-हित अनल-साज ॥६८॥

जैसे बाहर हैं दीख रहे
वैसी मन की मृदुता वाले
जन - सेवी, कारुणीक, प्रेमी
इन पर विचार कर ले, बाले !" ॥६९॥

बालाओं ने मुस्कान भरी,
नल के अन्तर में प्रात हुआ,
पा सुमन - राग मन-मधुप पास
रोमांचभरित मृदु गात हुआ ॥७०॥

सस्मित सलाज दमयन्ती तब
शालीन भाव से आगे चल,
नल के सम्मुख पहुँची समाल
मुद्रा गति भाव लिये कोमल ॥७१॥

जयमाला अपनी शोभा में—
आकर्षण-भरी विराज रही,
दमयन्ती के मृदु हाथो में—
नव छटा दिखाती आज रही ।।७२।।

घनमाला की चपला-बाला
प्रकटित शशि का मधुमिलन जान
माला ले ललित कला की ज्यों
तत्पर रखने को हुई मान ।।७३।।

श्रद्धा छविवती प्रकट जैसे
आशा की माला लायी हो,
छविमान प्रकट विश्वास देख
प्रिय जान सहज ढिग आयी हो ।।७४।।

अपने निश्चय पर अड़ी हुई,
पा सपनों का साकार भान,
खिल उठी स्वयं में दमयन्ती
पाया जीवन-आधार जान ।।७५।।

आलीगण से संकेत मिला
मृदुता की दिव्य छटा छायी ।
दमयन्ती ने जयमाला शुभ
नल के भ्राजित उर पहनायी ।।७६।।

नभ सुमन-वृष्टि बहुरंगमयी
आशीर्बचन के साथ हुई ।
वह ललित गान सखियों से सुन
नर-वर के साथ सनाथ हुई ।।७७।।

देकर शुभ आशीर्वाद देव
कर प्रेम परख निज लोक चले,
फिर "धन्य देव" जयकार लिये
दिव-पथ पर जाते लगे भले ।७८॥

छूटी स्वजनों की कुसुमाञ्जलि
शुभ स्वस्तिकार के भावों से।
विह्वलता भरे निहाल सभी
ममता के पूरित दाँवों मे ॥७९॥

माता मंजरी प्रियंगु मुदित
कर कलित थाल उपहार लिये,
पहुँची पति भीमराज के सँग
सचित जीवन का प्यार लिये ॥८०॥

वह समाँ निराली अपने में—
भावों के साथ निहाल हुई।
नयनों में रूपकला रमती
पर वाणी की गत चाल हुई ॥८१॥

उपहार लाभ कर राजा नल
अनवरत सुमन - कल - वर्षण में—
बगराने - से श्री केन्द्र बने
अनुपम छविमय शुभ दर्शन में ॥८२॥

नयनों में जादू की माया
सस्मित बिखेरती सुमन - हास
छूटी कुसुमाञ्जलि सखियों की
भरकर मन में मधुमय हुलास ॥८३॥

प्रत्याशी असफल विवश पड़े
चिन्तित अपनी असफलता में,
अपनी कटु दशा विचार चले
कुंठित - से भाव - विकलता में ॥८४॥

पुर की ललनाओं में जैसे
उत्सुकता को आकार मिला,
वर - वधू - छटा में रूपित ज्यों—
अनुपम जीवन - श्रृंगार खिला ॥८५॥

बालायें चँवर - धारिणी कुछ
पीछे से चँवर डुलाती थी,
ज्यों सभा - बीच यौवन - श्री की
प्रसरित छवि पास बुलाती थी ॥८६॥

मणि - हारों की मृदु जगमग में—
शोभा - सुराग के भाव लिये,
किन नयनों में न भरी मधुता
छवि से अन्तर - प्रस्ताव किये ॥८७॥

सुन्दरता की सीमा - रेखा
नयनों में विषय - विचार बनी,
निश्छल भावुक उर - प्रियता को
छवि - अंकन - हित आधार बनी ॥८८॥

जिसके भावों की मन - माया
जिस आशा तक जा पाती थी,
दर्शन की मोहक रूप - कला
वैसी उसको बन जाती थी ॥८९॥

मणि - जड़ित दिव्य अति सजे हुए
रथ में बाला आसीन हुई,
पा निषध-राज का पार्श्व आज
उसकी छवि - छटा नवीन हुई ॥९०॥

आगे था उचित उपक्रम अब
सिन्दूर - दान होने वाला,
धर्मानुसार सम्पन्न व्याह—
हो सके सफल कर जयमाला ॥९१॥

राजा का प्रेमादेश मान
नल नव हित-साज-समाज-सहित—
दमयन्ती को भी साथ लिये
चल पडा महल की ओर मुदित ॥९२।

'जय - जय' ध्वनि से सत्कार हुआ
मंगल गीतों का भाव मिला।
बाला - सखियों की मुदिता से
अन्तर-वसन्त का सार खिला। ९३॥

स्वागत - सुवास के भाव आज
जैसे आकर साकार हुए,
नव रीति - प्रेम के भाव साथ
देते सबको सत्कार नये ॥९४॥

सबके मन में यह चाह जगी
देखें मंगलमय व्याह - साज,
नल - दमयन्ती का पाणि - ग्रहण
हम निरख-परख हों धन्य आज ॥९५॥

स्वागत उछाह में दिन बीता
सन्ध्या सुहाग रच चली गयी,
अम्बर में शशि मुस्करा उठा
तारक-छवि लगती आज नयी ॥९६॥

विरचित विवाह - मंडप - रचना
लख चन्द्र - कला विस्मित होती।
मणियों की जगमग ज्योति सहज
तारक-स्वर में झिलमिल करती ॥९७॥

शोभा विकासिनी आभा से
मणि - दीपों का व्यापार रहा,
पाये छवि जिससे सुन्दरता
नयनों का हो उपकार महा ॥९८॥

मन - भायी कला प्रसारित कर
श्रृंगार - किरण अम्बर वाली,
विहँसित मधु-श्री ले नाच रही
भावों में भूली मतवाली ॥९९॥

मुस्कान स्वयं मणिखंभों में
कलभास मधुर रच पाती थी,
सुन्दर स्वरूप ढिग पाने पर
अनुपम निखार दे जाती थी ॥१००॥

रत्नों की विजड़ित झालर से—
होता संगम शशि-किरणों का।
मणियों की द्युति आलिंगन में—
पाती सुहास उपकरणों का। १०१॥

सुमनों की नवल विकास - कला
आभासित पद्मराग वाली,
पाकर हरीतिमा के पत्रक
होती विलसित बिखेर लाली ॥१०२॥

स्वर्णिम कल कदली - स्तंभों में—
उरु की गुरुता शोभा की - सी,
नव रूप लिये जो विलस रही
प्रिय-मिलन-कला-कृति रचती-सी ॥१०३

शुचि स्वर्ण-कलश की आभा पर
खिल मदन - कला लहरीली - सी
चपला का हाव दिखाती थी
अम्बर-घन काम-लजीली - सी ॥१०४॥

चँदवा में चित्रपटी मोहक
नव चित्रों की शृंगारमयी,
जगमग मणि - प्रभा विकीरण में—
लगती सुप्रीति - उद्‌गारमयी ॥१०५॥

रेशम - डोरी के बन्धन में—
चिपकी - सी कला प्यार वाली।
मृदु प्रेम - पाश के द्योतन में—
वर भाव न सरस कहीं खाली ॥१०६॥

चित्रावलियाँ अनुरूप बनीं
सज्जित मंगलमय अवसर की,
मानव - स्वभाव - रेखाओं को
जिनमें मधुता अन्तर - स्वर की ॥१०७॥

लहराते वसन ध्वजाओं के—
छवि - ताल - मात्राओं के बन्ध,
नूपुर - ध्वनि पा ललनाओं से
मृदु स्वर-चालित होकर चंचल ॥१०८॥

दर्पण - सज्जित प्रतिफलन-कला—
से दृश्य और ही हो जाता
मंडप का कोई रूप वहाँ
ओझल न आँख से हो पाता ॥१०९॥

बेदी जैसे गौरव - भावित—
रति के हाथों की रचना थी,
नयनों के जादू - चित्रण में—
मन - मोह - भाव की कलना थी ॥११०॥

रह - रह कर चमक - दमक होती
घनवत ज्यों क्षण-छवि पाने को
नल दमयन्ती के भावों में—
छवि-रूप-कला मिल जाने को ॥१११॥

आसन जिसपर नल दमयन्ती
हो सके साथ में समासीन,
मणि - रत्नो की नव रचना में—
लगता छवि-दानी - सा नवीन ॥११२॥

बन कर सुवासिनी राज सके
दमयन्ती श्रीवर साथ आज,
दर्शक भावों से आँक सकें
दम्पति-श्री का श्रृंगार - साज ॥११३॥

परिजन - समूह में समय जान
भर चला उमड़ उत्साह नया।
परिणय - वेदी पर श्रीवर के—
आने का तब आह्वान किया ॥११४॥

निज व्याह-साज सज्जित समाज—
ले वर नृप का आगमन हुआ।
मंडप के वैभव में सभाव
सस्मित श्रीवर का नमन हुआ ॥ ११५॥

कर लिये आरती वर-सम्मुख
सुन्दरियो ने ढिग गमन किया।
अपने सस्मित मृदु भावो से—
श्रद्धा के स्वर में नमन किया ॥११६॥

शतवार आरती - भावो से—
श्रीवर का शुभ सत्कार हुआ।
माता मंजरी प्रियंगु मुदित,
जिसका सपना साकार हुआ। ११७॥

फिर भीमराज ने भाव - सहित
मगल सत्कार नवीन किया।
मणि - विजड़ित जगमग आसन पर
वर को सभाव आसीन किया। ११८॥

मन - मोहक, मादक, मधुर-मधुर
आभा पड़ वर - मुखमंडल पर
सुन्दरियो के अन्तर - पट पर
चित्रित उसको करती सत्वर ॥११९॥

सुख की मुस्कान विलसती थी
मणि - दीपों की कोमल द्युति में।
उस मोहक छवि से नयनो का—
उपकार हुआ अनुपम गति मे ॥१२०॥

आगमन - भाव - अभिनन्दन से—
अवसर के सरस विधान चले
विलसित छवि की उस समाँ बीच—
सुन्दरियो के कलगान भले ॥१२१॥

मंडप में बाला दमयन्ती—
को लाने का आह्वान हुआ,
घन - विरल - हास - रेखा में ज्यो
शशि का चकोर हित भान हुआ ॥१२२।

आशानुसार वह रूप प्रकट
मंडप - विधान - द्युति - कलना में,
जगमग नखशिख शृंगार लसित
मधु विकसित नव तन रचना में ॥१२३॥

नूपुर के रूनझुन वादन से—
किंकिणी सुराग मिलाती थी।
कगन की ध्वनि मृदु तालमयी
गति के रव से मिल पाती थी ॥१२४॥

कौषेय वसन की आभा में—
कल जरी - काम के भास भले
श्रीमंत भाल ज्यों चन्द्र-कला—
राका प्रमदा पा बन - ठन ले ॥१२५॥

हर अँग मनोहर कलित साज
सखियों की कलाकारिता में।
वह चाल हंसिनी - सी जैसे—
संतरित मदन - मधु-सरिता में ॥१२६॥

बाहर लज्जा की छवि अनुपम
शालीन भाव दिखलाती थी,
पर अन्तर की मुस्कान मधुर
ज्यों अञ्चल पर फहराती थी ॥१२७॥

कोमल बाँहें संकोच - भरी
मृदुता के भाव जताती थीं,
झीने अम्बर में झलक - भरी
आभरित कला मे भाती थीं ॥१२८॥

उभरित विकास - तन - लहरो को
अम्बर में सहज छिपाती थी,
पर छिप न सकी गति भावों में—
इसलिये तनिक शर्माती थी ॥१२९॥

अपने में वह सकुचाती - सी
मुदिता के भाव विचारों मे,
चलती ज्यों केन्द्रीभूत हुई
जीवन - रस के शृंगारों में ॥१३०॥

वर के समीप आ खड़ी हुई
सखियो के मंगलगान साथ।
श्रीवर ने भी उठ भाव दिया
प्रिय वधू-रूप करके सनाथ ॥१३१॥

मंत्रों के साथ सुमन - वर्षण
कुसुमाञ्जलि के सत्कारों में
वर - वधू - रूप शोभा अनुपम,
मणि - दीप - साज-शृंगारों में ॥१३२॥

दोनों दर्शन की चाह मधुर—
लज्जा की ओट छिपाते थे,
पर दर्शक छवि नयनों में भर
फूले - से नहीं समाते थे ॥१३३॥

शुचि सुघर रूप प्रतिबिम्बित थे
दर्पण पर कलित छटाओं में,
मोहक शृंगार, सुछवि जैसे
थिर चपला - रूप घटाओं में ॥१३४॥

जोड़ी पर स्वयं विमोहित वे
वर - वधू स्वयं से इतर जान,
नयनों के मोहक धोखे में,
अवसर पर दोनों भावमान ॥१३५॥

दोनों जब स्वस्थ हुए मन से
तब एक दूसरे को विचार,
मुड़कर सलाज फिर निरख सके
दर्पण में रूपित रूप - सार ॥१३६॥

वर की शोभा कमनीय सहज
प्रतिबिम्बित दर्पण मे निहार—
नयनों को नहीं रोक पाती
बाला मृगनयनी बार-बार ॥१३७॥

प्यासी आँखों से पान किया
वह रूप-सुधा तब जो भर कर,
पर प्यास कहाँ बुझने वाली
क्षण-क्षण नवीनता के रस भर ।।१३८।।

नव बूँद-रूप में भाल-बीच
अति मधुर स्वेद तब झलक पड़ा
ज्यों नयन-पात्र में अँट न सका
वह रूप-सुधा कुछ छलक पड़ा ।।१३९।

वर ने भी दर्पण में देखा
दुलहन दमयन्ती का निखार।
वह भूल गया क्षण अपने को
बह निकली उर नव मोह-धार ।।१४०।।

मधुमय विकास की काया में—
रमणीय कला ज्यों खेल रही,
नव साज भरी जगमग द्युति में
ज्यों भरती मौन हिलोल रही ।।१४१।।

शालीन भाव थे झाँक रहे
मुख की कोमल सुघराई में
अधरों की लाली मज्जित-सी
अन्तर-रस की गहराई में ।।१४२।।

नयनों में भाव शिथिलता का
अपने में पूरित झाँक रहा,
कुछ लाज भरी गरिमा लेकर
प्रतिबिम्ब-कला-श्री आँक रहा ।।१४३।।

छवि की झाँकी के भाव देख
परिणय का कार्य-विचार हुआ,
कुसुमाञ्जलि से सुमनिल वर्षा,
फिर मंत्रों का उच्चार हुआ ॥१४४॥

मंगल गीतों के भाव आज
छवि के रस से मिल पाते थे।
सखियों के स्वर से भावित हो
अनुपम रस-धार बहाते थे ॥१४५॥

वर-वधू भाव से दोनों फिर
शुभ आसन पा आसीन हुए।
आपस की अनुपम झाँकी से
दोनों के भाव नवीन हुए ॥१४६॥

परिजन, पुरजन, हितजन अपने
सबके सुख-दाँव न रहे शेष,
भावों में मज्जित भूले-से
छवि लगे निरखने निर्निमेष ॥१४७॥

अब पाणि-ग्रहण, सिन्दूर-दान
कौतूहल के आधार बने।
अन्तर-वसन्त की मुदिता में
मधु-सुमन खिले सबके अपने ॥१४८॥

मंगल गीतों के साथ-साथ
फिर पाणि-ग्रहण संस्कार हुआ।
वर-वधू-रूप से दोनों का—
तब भाव-सहित सत्कार हुआ ॥१४९॥

श्रीवर ने कर सिन्दूर लिया
बाला की भर दी माँग सुघर।
देकर सुहागिनी का जीवन
प्रिय हुआ प्रिया का जीवन-धर ॥१५०॥

सखियों के मंगल गीतों से—
प्रिय जन - मन भाव सहज सरसे।
फिर उनके कोमल हाथों से—
शुभ-सूचक दिव्य सुमन बरसे ॥१५१॥

बाला - सखियों के गीतों में—
गाली के कल-परिहास चले।
वर - दूल्हन ने मुस्कान भरी,
अवसर पर सबके भाव भले ॥१५२॥

भगिनी की गाली सुन नल ने
ससुरालय का रस - भाव लिया।
फिर भी आगे कुछ सुनने को—
मुस्कान - बीच प्रस्ताव किया ॥१५३॥

लज्जारुण आनन खिल उठते
विहँसित अधरों की लाली से।
वर - वधू युगल सस्मित होते
क्षण व्यंग - भरी मृदु गाली से ॥१५४॥

आमोद - भरे परिहास - हास—
से मन की कटुता खो जाती,
बहुभाँति व्याह-विधि-स्वर में ज्यो—
धर रूप मधुरिमा लहराती ॥१५५॥

दूल्हन के कोमल अञ्चल में—
वर - उत्तरीय की गाँठ जुड़ी।
उस प्रेम-भरे शुभ बन्धन में—
जीवन - सुराग की मिली कड़ी ॥१५६॥

बाहर का वह मृदु ग्रन्थि - भाव
अन्तर का पावन मेल बना,
अपनापन जहाँ चिपक पाया
जीवन में पा मन का सपना ॥१५७॥

फिर प्रेम - साक्षी अग्निदेव—
को मान युगल निर्भर हुए।
देने फिर लगे भाँवरी शुभ
भर ममता के उद्‌गार नये ॥१५८॥

मंगल गीतों, मंत्रों के सँग
अञ्जलि - बहार सुमनों वाली,
गुदगुदी उठा देती मन में
ललनाओं के उर मतवाली ॥१५९॥

आगे - आगे वर की गति के—
पीछे गति हंसगामिनी की।
प्रतिबिम्बित छवि मणि - रत्नो पर
ज्यों उर्मिल प्रभा दामिनी की ॥१६०॥

विकसित वसन्त, उसकी बहार
दोनों ज्यों मिल गति में मन्थर,
पद - चालन की माधुर्य - कला
दर्शाते पा नव जीवन - स्वर ॥१६१॥

वर - वधू - रूप प्रतिबिम्बित थे
नव जड़ित दर्पणों के ऊपर,
सब भाँति कलित छवि - समता में,
पर कमी रही नूपुर के स्वर ॥१६२॥

कंगन जो कर लेता सलाह
गति - लसित किंकिणी के स्वर से,
वह प्रेम - कथन मिल सका नहीं
चल रूपों में दर्पण पर से ॥१६३॥

प्रतिबिम्ब - कला की जगमग में—
भावों के तार मचलते थे,
सुन्दरियों के अधरों पर से—
गीतो के स्वर में मिलते थे ॥१६४॥

वर - वधू - साथ गति-भाव धरे
क्षण दे प्रतिबिम्ब - रूप खिलते,
मानो शृंगार सुछवि दोनों
सेवारत बार - बार मिलते ॥१६५॥

या लुका - छिपी थे खेल रहे
श्रद्धा विश्वास विनोद भरे,
शोभा की आड़ी लहरों में—
चपला के नव शृंगार धरे ॥१६६॥

परिणय-विधान सब भाँति सफल
रुचिकर अति मधुर कल्पना से।
आनन्द - मग्न सब लोग हुए
शोभित शृंगारिक रचना से ॥१६७॥

यों भाँति - भाँति मोहक विधान—
से ब्याह - कार्य सम्पन्न हुए।
आशानुसार छवि - दर्शन से—
नव राग - रंग उत्पन्न हुए ॥१६८॥

इच्छानुसार नल - दमयन्ती—
को भावों का सत्कार मिला।
जीवन में स्नेह सफलता का—
आशानुसार आसार मिला ॥१६९॥

परिणय के मोहक उत्सव में—
जिन आँखों का सम्मान हुआ,
सचमुच उनको छवि - रसता का
जीवन में उत्तम ज्ञान हुआ ॥१७०॥

ज्योनार - व्यवस्था आगे फिर
अपने में आप निराली थी;
रसना की रसता ने ज्यों आ—
रूपित सुभोज्य-विधि पा ली थी ॥१७१॥

जेमन - विधान के साथ - साथ
बालाओं का मृदु गान चला।
गाली के व्यंजित भावों से—
मधुमय सुराग-रस बह निकला ॥१७२॥

अवसर की गाली मधुर भली
आनन्द - सुमन बरसाती थी
सस्मित आनन - कानन से चल
श्रुति - पथ रस-राग बहाती थी ॥१७३॥

व्यंजन - रस में स्वर की रसता
मिलकर बन जाती स्वादममी,
स्वादन - सुहासमय धारा में—
लहरित सुस्मिति आह्लादमयी ॥१७४॥

गाली के कोमल भावों से—
श्रीवर का जो सत्कार हुआ
दिन-दिन मन के अवगाहन को—
मधुरस - पूरित कासार हुआ ॥१७५॥

स्वागत से तुष्ट बराती सब,
निन्दा की कहीं न बात मिली।
अवसर की बनी व्यवस्था वह
अन्दर - बाहर सब भाँति भली ॥१७६॥

आगत - स्वागत के हेतु सभी
परिजन - समाज अतिशय तत्पर।
क्या माँग, तुरत पूरी करते
श्रद्धा - विचार - भावो से भर ॥१७७॥

जन - जन की सेवा समझ - बूझ
अति नम्र भाव से पूरित कर,
फिर-फिर लेकर आदेश - भाव
आगे बढ़ते परिजन तत्पर ॥१७८॥

सेवा स्वागत युग रूपित ज्यों
व्यवहार - जनित सुन्दरता में—
जन-जन को तोषद आज हुए
अवसर की दिव्य सफलता में ॥१७९।

जैसे अभाव ही भाग चला
अवसर पर अपनी हार मान।
आश्चर्य - चकित हो जाते थे
पाकर स्वागत आगत सुजान ॥१८०॥

आतिथ्य - भाव - सत्कारों की—
वह समाँ निराली बन पायी,
स्वर्गिक निधियाँ ज्यों स्वय सजी
स्वागत में वहाँ उतर आयी ॥१८१॥

रुक एक पक्ष तक वर - समाज
सत्कृत जीवन - रस भाव लिया ।
फिर मिल - जुलकर आज्ञा माँगी
निज-निज पथ गमन-विचार किया ॥१८२॥

सन्ध्या - बेला में बात चली,
"प्रातः शुभ समय विदाई का'
सन्ध्या ज्यों अपनी किरणों से—
लेखा कर गयी जुदाई का ॥१८३॥

स्वागत - सेवा, फिर राग - रंग,
रंजन मन के उद्‌गारों में।
उर छाप छोड़ती बीत चली—
रजनी अपने शृंगारों में ॥१८४॥

प्राची की गोदी में उतरा
प्रातः फिर जग चित्रित करता,
परिजन - विछुड़न का कटुक कथन
दमयन्ती के उर में भरता ॥१८५॥

भोली बाला सखियों से मिल
अब गले लगाकर सिसक पड़ी।
सकरुण आँखों से पिघल-पिघल
गिरती भावों की अश्रु-लडी ।।१८६।।

आली परिहासा नाम सत्य—
करती नित मोद बढ़ाती थी,
पर आज विदाई के दिन वह
भर भाव रुदन ही पाती थी ।।१८७।।

जिन आँखों से यौवन-सुहास
भर मोद चपलता भर पाता,
उन आँखों से आँसू-वर्षण—
हित आज मिलन घन बन जाता ।।१८८।।

शशि-कला गगन-घन में छिप कर
जिससे निज लाज बचाती थी,
मुस्कान वही धर और रूप
आँसू से भीगी जाती थी ।।१८९।।

जिसके उर-अञ्चल से लगकर
मलयानिल बास लिपट भरता,
हा ! आज आर्द्र बन पीड़ा का—
कटु भाव चकित अनुभव करता ।।१९०।।

प्राणों से प्यारी बेटी का—
माता दुख कभी न देख सकी,
भावों भर भेंट, लिपट उससे
वह भरने लगी करुण सिसकी ।।१९१।।

फिर पास पिता के चरणों पर
बेटी के आँसू टपक पड़े,
भावों के घन से द्रवित नेत्र
ममता - चपला से चमक पडे ।।१९२।।

झझा के जीवन - दुर्दिन में—
आँखे जो कभी न जल भरतीं,
वे आज घनिल हो बेटी का—
सकरुण अम्बर-सिर तर करतीं ।।१९३।।

बेटी को आशीर्वाद दिया
धीरज - बल अपने साथ लिया ।
अवसर लख उचित प्रबन्ध - सहित
जन-जन का शुभ सत्कार किया ।।१९४।।

यौतुक में जितना दिया उसे
जन कौन कुशल जो आँक सके ?
जिसकी जैसी, अंकन - विधि थी
कलना के भाव वही उसके ।।१९५।

दमयन्ती के सँग जाने को—
स्वर्गिक निधियाँ आ उतर पड़ी
शृंगार - साज धन - वैभव ले—
निज तत्परता में रहीं खड़ी ।।१९६।।

नल चले विदाई - हित अन्दर
भावों की लहरे उमड़ चलीं,
मानस - पंकज - दल की कंम्पन
ज्यों आज सफल पा प्रेम-अली ।१९७।।

माता मंजरी प्रियंगु - साथ
आलीगण - साज - समाज वहाँ,
आगन में भाव विदाई का,
था निज पर का कटु भाव कहाँ ? ॥१९८॥

राजा नल का आगमन हुआ
मुदिता भर कलित समाज खिला,
जैसे जीवन की रसता का
मधुमय लहरित बन साज मिला ॥१९९॥

भावों के साथ नमन वन्दन—
का मोहक शुचि व्यापार चला,
मानो स्वरूप धर प्रकट हुई
आगन में मृदु व्यवहार - कला ॥२००॥

कोमल सुढार, अति सज्जित तन
कुसुमाञ्जलि छोड़ सुभाव किये,
सखियाँ करती थीं कुशल प्रश्न
सस्मित अवसर के भाव लिये ॥२०१॥

आभार प्रकट कर देने में—
अन्तर की कला झलकती थी
अवसर वह जान विदाई का—
मोहक उर चाह मचलती थी ॥२०२॥

यौतुक, उपहार, दान देकर
माता ने आशीर्वाद दिया,
बर - कन्या के कल्याण - हेतु—
क्षण विश्वदेव को याद किया ॥२०३॥

पति - धर्म सिखाया बेटी को—
"सेवा का भाव समर्पण में,
छाया - सी पति के साथ रहे
सुख, दुख, जीवन - संघर्षण में ॥२०४॥

पति - सेवा में सन्तोष - राह
जिस नारी को मिल पाती है,
जीवन की अन्तर - ज्योति सदा
उसको सत्पथ बतलाती है ॥२०५॥

नित पति के अन्तर - भावों में—
रसता भर दे जो मुदिता की।
उसकी शृंगार - कलाओं में—
आभा मुस्क्याती शुचिता की ॥२०६॥

सर्वस्व समर्पण कर दे जो
निज हित न कहीं कुछ चाह रहे,
पथ परम उसी का होता है
फिर कौन उसे क्या राह कहे ? ॥२०७॥

पति - हेतु समर्पित सर्वभाव,
फिर इससे बढ़कर भोग कौन ?
नारी - जीवन के भावों में—
इससे बढ़कर फिर योग कौन ?" ॥२०८॥

बाला - सखियों ने जीवन - हित
माता का शुभ उपदेश लिया।
फिर दमयन्ती के भावों में—
अपना उर - भाव विशेष किया ॥२०९॥

नल ने सोचा, — क्या दिव्य राह !
यदि भाव सहज यों मिल पाये।
इन भावों के अनुरूप, अहा !
यदि पुरुष-भाव भी हो जाये ।।२१०।।

श्रद्धा - नत भाव - सगिनी को—
जीवन - अनन्यता में पाकर,
विश्वासमयी आशाओं के—
पथ पर चलना ही नित हितकर ।।२११।।

श्रद्धानुसार विश्वास दिया
राजा नल ने निज जीवन का,
शुचि परम भाव तक चलने का—
पा साथ सगिनी के मन का ।।२१२।।

नारी - समाज को मोद मिला
नल ने सभाव सन्तोष दिया,
मृदु शब्दों में हितवाद - सहित
जीवन का मंगलवाद लिया ।।२१३।।

छवि - लसित उमड़ते हाथों से
उपहार अमूल्य भरे अञ्चल
लगते मुख की सस्मित द्युति में,
जैसे शशि - हास - रचित संबल ।।२१४।।

ललनाओं ने ममता देखी—
सम्मुख उस मिले पाहुने में,
सौन्दर्य - राग की अभिलाषा—
पूरित ज्यों मन के सपने में ।।२१५।।

अवसर का हास विनोद वहाँ
युवती - समाज से हुआ सरस।
मुदिता था भाव विदाई का
होती क्षण विचलित विरह परस ॥२१६॥

अब सोच उपक्रम चलने का—
मोहक तत्परता जाग पड़ी।
उस मिलन - भेंट के अवसर पर
हिल उठी विरह-श्रृंगार कड़ी ॥२१७॥

वर - वधू - रूप के भावों में—
वह समाँ बनी सत्कार - भरी,
जयमंगलभरे सुमन - वर्षण—
की कला निखरती प्यार - भरी ॥२१८॥

फिर समय जान नल - दमयन्ती—
को ले परिजन, नारी - समाज,
चल पड़ा विदाई - हेतु विकल
लेकर अपना शुभ कलित साज ॥२१९॥

मुदिता की धारा विचलित हो
करुणा - प्रवाह से मिली वहाँ,
उस संगम पर अब खड़े स्वजन
आँखों के ऊर्मिल भाव जहाँ ॥२२०॥

दमयन्ती सबको साश्रु - नयन
लख रही मोहवश बार - बार।
वह मिलन, हाय ! मुख शब्द कहाँ ?
सिसकी में विगलित अश्रु - धार ॥२२१॥

फिर हाथ जोड़ कर निज मन की—
आँसू से व्यथा सुनाती-सी,
मुँह फेर नमित रथ पर बैठी
करुणा की धार बहाती-सी ॥२२२॥

नल भी जा बैठा पार्श्व-भाग
सबको कर संयम-सहित नमन,
रथ में गति का आदेश दिया,
उस क्षण का हो क्या भाव-कथन ? ॥२२३॥

निज-निज भावों की व्यथा लिये
सब लोग निरन्तर ताक रहे,
परवशता-भरी विदाई की—
मोहकता मन भर आँक रहे। २२४॥

बेटी जब घर से जाती, हा !
उसके विलाप का चुभता स्वर—
क्षण भर क्या कभी सँभाल सका
वात्सल्य-भरा मानव का उर ? ॥२२५॥

सूना कर जननी का अञ्चल
हा ! छोड़ जनक का वह दुलार,
जा रही सिसकती दमयन्ती
सखियों का छोड़ अपार प्यार ॥२२६॥

हा ! छोड़ जन्म-भू की लीला
भोली वैदर्भी कहाँ चली ?
हा ! प्रिय तक पहुँचाने वाली—
होती है निर्मम कठिन गली ॥२२७॥

क्षण नगर - कोट की वह झाँकी
चित्रित कर नयन - पुतलियों में—
फिर स्वजन - भीड़ के चित्रण सँग
रचती आँसू की लड़ियों में ॥२२८॥

पालित मृग पथ में मिला, हाय !
वह रूप लिये भोलेपन का।
रथ रोक रुकी क्षण दमयन्ती
पा मौन रुदन उसके मन का ॥२२९॥

झुककर मस्तक पर हाथ फेर
अञ्चल से आँसू पोंछ चली।
फिर बैठ सँभलकर देख सकी
परिजन-समाज क्षण भीम-लली ॥२३०॥

दूरी से लख यह दृश्य वहाँ
आलीगण, परिजन भाव - विकल,
आँसू की विगलित माया ही
अब रही भेंटती मौन निकल ॥२३१॥

फिर भीमराज ने धीरज धर
निज अतिथि जनों से मिल जुल कर,
सबको सत्कार - विचार दिया
यौतुकवाही दल कर पथ पर ॥२३२॥

कुछ दूर पहुँचने पर नल ने
रथ रुकने का आदेश दिया।
जो यत्र - तत्र छिटके - भटके
उन सभी जनों को साथ लिया ॥२३३॥

देखा दमयन्ती ने समाज
शुचि भावों में निज प्रियतम के।
विचलित भावों को मोड़ लिया
लख नूतन पथ निज जीवन के ॥२३४॥

तरु - वीरुध के खग-गीतों से—
सुन पाती थी अब करुण गान,
विलसित वसन्त की लीला में
पथ पर पाती विपरीत तान ॥२३५॥

अति मोहक स्वजन - वियोग - भरी
पथ हृदय - वेदना मिलती थी,
पर पाकर वह प्रिय - पार्श्व - भाग
शुचि सहज प्रेम - पथ धरती थी ॥२३६॥

आँसू की चलती लीला को—
आँखों के साथ अरूप भाव—
दे चली समय अवसर विचार
ढीला कर ममता का कसाव ॥२३७।

रह - रह कर टीस उठाती थी
वह बिछुड़न निज आलीगण की,
विकसित उपवन की लीला में—
मोहक क्रीड़ा बीते क्षण की ॥२३८॥

रोकर प्रियतम को पाने की—
लीला जीवन में चल पाती,
पाने पर आँसू की पीड़ा
प्रिय भाव-सुघन में मिल जाती ॥२३९॥

दमयन्ती ने निज भावों को—
प्रिय के भावों से जोड़ दिया,
पावन विश्वास सहज पाकर
श्रद्धा से धर, भ्रम छोड़ दिया ।।२४०।।

प्रिय के भावों की छाया में—
पथ प्रकृति-छटा अब परख सकी,
खग - गान - भरी हरियाली में—
सुमनों की जगमग निरख सकी ।।२४१।।

रथ बढ़ा विदर्भा के तट से,
वह दृश्य निराला तटिनी का।
तट तरु-शिखाग्र, खग-सुमन-भाव
लख मुदित हृदय वर-पत्नी का ।।२४२।।

जल पर लहरा धर गगन-राह
जब हंस-पाँति कतराती थी,
पंखों के दोलन में बाला
कुछ मोहक राग मिलाती थी ।।२४३।।

रथ की गति लख जब मृग-माला
भर चली चौकड़ी दावों में,
सरिता - कगार की दूरी से—
जा मिली क्षितिज के भावों में ।।२४४।।

पनघट की सुन्दरियों के नव—
मोहक लहरें प्रतिबिम्ब बना—
क्षण भर यौवन के चित्र खींच
चल देती तज पथ की रचना ।।२४५।।

चकवी चकवा के भावों में—
संयोग आज युगपद पाकर,
दमयन्ती लख कुछ मुदित हुई
रथ की उर्मिल-सी मृदु गति पर ।।२४६।।

मोहक सधुन्ध वह देश नाँघ—
लहरें सन्देश सुनाती थी,
बाँहों भर तरणी से मिलकर
प्रिय से निज मिलने जाती थी ।।२४७।।

श्यामा अपनी प्रिय बोली से—
लहरों में राग मिलाती थी,
जिसकी ध्वनि जीवन - राग लिये
प्रिय-प्रेम-पुलिन तक जाती थी ।२४८।।

कौतूहल के छवि-जीवन मे—
मादक रहस्य ज्यों तिरता-सा,
श्यामल लहरों के नर्त्तन में—
खोया रहस्य भी मिलता-सा ।।२४९।।

देखा बाला ने भावभरी
आँखों में लीला नाच रही।
परिणाम एक प्रिय - मिलन - भाव
सबमें मोहित - सी बाँच रही ।।२५०।।

सब कुछ खोकर प्रिय - प्रेम - राह
की झाँकी पाती नयनों से,
रंजित बस एक राग में पथ
विलसित पत्रक-दल - सुमनों से ।।२५१।।

नल के वसन्त की क्या सीमा
कवि कैसे कौन कथन कर दे ?
जीवन - रम प्रेमाकार पास
क्षण - क्षण नवीनता जो भर दे ॥२५२॥

विलसित सुमनों के भावों में—
लतिका विकास - माया वाली,
श्यामा के स्वर मे विह्वल जो—
उत्सुक भरने को उर - डाली ॥२५३॥

लख समुद तितलियों के नर्त्तन
खग - गान सहज लय में कोमल,
वीणा - वादन सम मधुप - राग
सुनते जाते प्यारी - सँग नल ॥२५४॥

शीतल समीर नव गंध लिये
अंचल में फहरन दे पाता।
नव स्पर्श - लाभ की माया में—
मृदु भावों से नृप भर जाता ॥२५५॥

पल्लव की ओट लिये कम्पित
खिलने को कलियाँ झाँक रही,
यौवन - विकास - सुन्दरता की
दम्पति में मधुता आँक रही ॥२५६॥

जीवन - वसन्त की निज श्यामा
कह देती कुछ जब निज स्वर से,
भावों की कलियाँ भर विकास
भर लेती राग नये सिर से ॥२५७॥

आसार - भरे मृदु भावों में—
हिल - मिल समीर कुछ कह पाता ।
शीतलता ले मधुगंध - भरी
प्यारी - सँग नृप रथ पर जाता ॥२५८॥

तटिनी - कगार, तरुवर शिखाग्र
कलरव - विहार देखा जी भर,
वह निरख परेवा का चुम्बन
नल क्षण-विभोर भर प्यार सिहर ॥२५९ ।

छिपते मयूर की बोली से
माती मयूरिनी का दुलार
लखते जाते रथ की गति में—
प्यारी सँग नल भर सहज प्यार ॥२६०॥

कल उत्तरीय के भावों में—
विश्वास - कला - कृति लहरित-सी,
श्रद्धामय अञ्चल से हिल - मिल
चलती रथ - गति में फहरित-सी ॥२६१॥

दम्पति के भावों की रेखा—
नव रूपों में पथ पर मिलती,
मधुगंधभरी भीनी - भीनी
अन्दर - बाहर अतिशय खिलती ॥२६२॥

मधुमय भावों के नव विचार
पथ प्रकृति प्रकट हो दरसाती,
दम्पति को रस-झाँकी देकर
रथ की गति में छिपती जाती ॥२६३॥

सबको सुविधा का समाचार
नृप पथ में रुक लेता जाता।
सेवक - समाज, परिजन - समूह
पथ-श्रान्ति-व्यथा फिर क्यों पाता ? ॥२६४॥

मुदिता की मधुर उमंगों में—
श्रम आलिंगन कर दिपता जब,
कटुता की काली रेखा फिर
दिखलायी देती पथ में कब ? ॥२६५॥

वन - श्री, सरिता, गिरि, उपवन, पथ
आनन्द - छटा के भावों में—
खग-मृग-विहार से इंगित कर
मुदिता भरते आशाओं में ॥२६६॥

मंगल विचार के साथ सभी
अवसर पर पहुँचे निषध-देश।
वेला भी सन्ध्या आ पहुँची
साभार बदलती सहज वेश ॥२६७॥

पिंगल किरणों की आभा में—
सन्ध्या वह दृश्य सँवार रही
श्यामल अम्बर की गोदी मे
विलसित-सी कर शृंगार रही ॥२६८॥

पहुँचे स्वजनों के साथ नृपति
अपने पुर का वह छोर जहाँ,
हो गये प्राप्त कर समाचार
पुरजन सब आत्म-विभोर वहाँ ॥२६९॥

तत्परता-भरी सजावट का—
छाया ज्यों नव उद्‌गार वहाँ
मणि-माणिक-मरकत- खचित दिव्य
था महलों का श्रृंगार जहाँ ॥२७०॥

सज्जित अटारियों के ऊपर
चढ़ चला उमड़ नारी-समाज
मणि-रत्निल कला-विकीरण में—
वस्त्राभूषण के कलित साज ॥२७१॥

चपला मानो बहुरूप धरे
घनमाला में विलसित होती,
चौधी में मोहक भाव-कला
सौन्दर्यमयी विकसित होती ॥२७२॥

अति दिव्य सजावट स्वागत से
मगल गीतो के भावों में—
सज उमड़ पड़ा पथ जन-समूह;
विलसित छवि-भाव-लहर पुरमें ॥२७३॥

अनुपम स्वरूप के दम्पति की—
छवि - कला देख जन नयनों से—
होने को तृप्त आज सज्जित
जीवन के मोहक सपनों से॥२७४॥

धीरे - धीरे रथ की गति से—
छवि का श्रृंगार उमड़ता था।
नयनों के आगे दम्पति - श्री—
लख मोहक राग निकलता था ॥२७५॥

रथ का प्रवेश अब मुदित नगर—
के राजमहल - पथ हो पाया
जयगान, सुमान, सुमन-वर्षण—
की दीख पड़ी शोभित माया ॥२७६॥

रत्नाभ कला की जगमग में—
ललनाओं का शृंगार खिला,
सज्जित अटारियों से सस्मित
मुदिता का मोहक भाव मिला ॥२७७॥

रत्नाभ दमक थी दम्पति की—
शृंगारमयी कलनाओं से।
सस्मित मानो थी पूछ रही
सौन्दर्य - सुपथ ललनाओं से ।२७८॥

मन्थर गति से रथ चला और—
जा रुका पाँवड़ों के पथ पर।
मंगल सुर-वन्दन हुआ दिव्य
रथ से दोनों फिर गये उतर ॥२७९॥

सन्ध्या की मृदु पिंगलता में—
मणि - रत्नों की श्री चमक उठी।
सस्मित छवि - कलित अटाओं से
ललनाओं की छवि झमक उठी ॥२८०॥

उसमें श्रीकलिता के पथ पर
सुषमा ऋतुराज स्वरूप धरे,
मानो दम्पति का गमन हुआ
यौवन - मधु कलित अनूप भरे ॥२८१॥

नयनों भर छवि सब निरख सके
मंगल सुमनों के वर्षण में,
उस समय स्वयं को भूल गये
नव फलित रूप आकर्षण में ।।२८२।।

निर्मलकारी सौन्दर्य परम—
दर्शनपर आँखों में छाया।
कटुता को दे जो दिव्य रूप,
ऐसी उस छवि की मृदुमाया। २८३।।

सौन्दर्य परम सम्मुख पाकर
उर - कटुक वासना भग जाती,
मुड़ परम दिव्यता के पथ पर—
चलने की आशा जग जाती ।।२८४।।

अभिनन्दन, वन्दन, जय-ध्वनि से—
नव दम्पति का सत्कार हुआ।
अनुपम शुचि रूप - प्रदर्शन से
उस अवसर का शृंगार हुआ ।।२८५।।

नल दमयन्ती को साथ लिये
पहुँचे निज माता - पिता - पास।
भावों से भर नव दम्पति ने
सस्नेह बुझायी नमन - प्यास ।।२८६।।

फिर अन्य बड़ों को नमन किया
सद्भाव - सहित परिचय देकर।
छोटे पाये आशीष - बचन,
सब लोग गये पुलकन से भर ॥२८७॥

नृप नल ने राज - भवन में जा
मंगल विधान, आचार किया।
स्वागत में आगत स्वजनों का—
सद्भावपूर्ण सत्कार किया ॥२८८॥

परिचय, सत्कार, नमन-विधि की—
ज्यों परम छटा साकार हुई,
नल दमयन्ती के व्याज आज
नयनो को रूपाधार हुई ॥२८९॥

आशानुसार यों दमयन्ती
परिणय - पथ से प्रिय-साथ हुई।
परिपूर्ण प्रेम के भावों से—
प्रिय जीवन - सहित सनाथ हुई ॥२६०॥

शान्ति-विलास सर्ग

मन का सपना साकार सफल
नल ने निज जीवन में पाया।
रसता विलास में भरने को—
वैभव-शृंगार उतर आया ।।१।।

सुख-शान्ति-भरा वह राज जहाँ—
जन-जीवन-धन का रक्षण था।
राजा में अपने प्रजा-प्रेम—
का मिलता पूरा लक्षण था ।।२।।

नृप-हित मे निज हित समझ सका
उत्सर्गभरा जन-जीवन था।
मानवता की रेखाओं में—
कलरंजित जैसे प्रति जन था। ३।।

शुचि भाव-भरे जन-जीवन में
कटुता की गन्ध न आती थी।
सम्पत्ति स्वयं दर्शन-हित आ
जीवन-शृंगार बढ़ाती थी। ४।।

अपना-अपना अधिकार समझ
उपभोग उसी पर चलता था।
सेवा में पर-सहयोग-भाव
अवसर पर सबको मिलता था ।।५।।

दमयन्ती को सन्तोष हुआ
लखकर पति का सुन्दर स्वदेश।
सुन्दरता अपने भावों में—
छायी ज्यों आ धर विविध वेश ॥६॥

वह महल कि जहाँ सुबास मिला,
आकर्षण का था मूर्त्त रूप
वह कक्ष विशेष कलित छविमय
दमयन्ती को पाकर अनूप ॥७॥

जादू की श्री बगराता था
मणि-रत्नों का छवि-भाव-जहाँ,
दमयन्ती को पाकर जैसे
वह कक्ष विशेष निहाल वहाँ ॥८॥

यौवन-विकास मे मादकता
लेकर छवि-धार उमड़ चलती।
रत्नों के नव शोभा-गृह में—
छवि-सारमयी बाला लसती ॥९॥

हर अंग सुतन-छवि-छलकन से—
शृंगार सँजोकर धरती जो,
ऐसी सुकक्ष की रचना थी
मन में मोहकता भरती जो ॥१०॥

आशा भर जगमग होती थी
जो चकाचौध कर देती थी,
दमयन्ती को ज्यों केन्द्र मान
निज गोदी में भर लेती थी ॥११॥

जीवन का राग निखर कर ज्यों
सुन्दरता का आभास लिया
मन का कोना - कोना मोहित—
होले, उसने विश्वास किया ।।१२।।

दीवालों के कल चित्रण से—
सौन्दर्य - कला मुस्क्याती थी ।
रम - ओर जान संकेत स्वयं
दमयन्ती भूली जाती थी ।।१३।।

गलबाँही के मृदु चुम्बन में
नयनो का जादू बना हुआ,
रतिमय वह रंग - विलास - रचित
कोमल भावों से सना हुआ ।।१४।।

विकसित अंगों के भावों में—
वसनों की छटा निराली थी,
छवि - अंग - भंगिमा में फहरित
लक्षित रतिमय रस वाली थी ।।१५।।

रति - लीला के सकेतों पर
छाती सछोह कँप जाती थी ।
आँखें मादक उन्मादभरी
मृदु भावों में झँप जाती थी ।।१६।।

धर रूप विविध ज्यों मदन - कला
शृंगार नयन भर आँक रही,
दमयन्ती को अन्दर पाकर
रसमय भावों से झाँक रही ।।१७।।

भावों के उन संकेतों का—
प्रिय लक्ष्य आज मिलने वाला।
अन्दर-बाहर के भावों से—
कुछ सोच रही सहमी बाला ॥१८॥

भावों मे डूबी दमयन्ती—
आकर अलिन्द से निरख सकी।
सम्मुख उपवन की दिव्य छटा
मोहक भावों मे परख सकी ॥१९॥

कोयल कुछ कहकर चली गयी
उसका मृदु भाव न बन पाया।
यह चंचरीक गुजार लिये
क्या कहने ढिग, क्योकर आया? ॥२०॥

किसलय में छिपती कलियों के—
जीवन में क्या उन्माद भरा?
कह दे कोई, अलिगुजन में—
छूने का कौन प्रसाद भरा? ॥२१॥

ममता की बाँहों में पत्रक—
रुक-रुक क्या सिहर समेट रहे।
प्रिय मिलन-भरी किस आशा मे—
कुछ कंपित स्वर से भेट रहे ॥२२॥

कुमुमित मृदु कलित लतायें क्यों—
झुक कर भावो से भर जातीं
मादक समीर के झोके से
तरु-परस-भाव में बल खातीं ॥२३॥

वह कौन भाव तितली पाकर
नर्त्तन करती-सी थिरक रही।
नव राग-भरे सुमनों से क्यों—
सहमित चुम्बन ले झिझक रही ॥२४॥

लज्जा निज त्याग कपोती वह
अपने प्यारे से क्या कहती ?
किस मधुर मिलन की मदिरा वह
मादक भावों से रुक भरती ? ॥२५॥

भावों के सगम की रेखा
क्या देह-मिलन मे खीच रही ?
अन्दर-बाहर क्या प्रेम-कथा
वह चाह समागम बीच रही ? ॥२६॥

ग्रीवा-चुम्बन मादक पाकर—
परिरंभ परेई का करता,
संसार परेवा भूल कटुक
रस-भावो की झोली भरता ॥२७॥

सुमनों की रागभरी माया—
तज भ्रमरी प्रिय अलि से मिलती।
बाँहोंभर निज आलिगन मे—
दिन भर की व्यथा दूर करती ॥२८॥

हारिल निज व्यथा प्रेयसी से—
डाली पर छिपकर कह देता,
किस प्रेम-विन्दु के पान-हेतु—
पथ सहज सरलता का धरता ? ॥२९॥

पशु - पक्षी प्रेम - भरे विचरित
दिन की रूपद उजियाली में,
मादकता भरने को तत्पर
अपनी - अपनी उर - प्याली में ॥३०॥

पथ धरे अनादि वासना का
सुख - हेतु सभी डग भरते - से
मिल रहे प्रेम की लीला में—
अन्तर - कर से छवि धरते - से ॥३१॥

सबकी चलती प्रिय प्रेम - कथा,
मन का मोहक व्यापार चला,
पर सहज समर्पण क्या जाने
भोले विचार के जन्तु, भला ? ॥३२॥

दमयन्ती सोच रही मन में—
शुभ मिलन, अहा ! भावी क्षण का ।
"उत्सर्ग कर चुकी पहले ही
सर्वस्व सहज निज जीवन का ॥३३॥

भूली प्रियतम की बाँहों में—
निर्भर बनी रह जाऊँगी,
तन - मन से पावन सेवा दे—
जागरण - बीच सो जाऊँगी ॥३४॥

मेरा अपना क्या जीवन में,
तन - मन-यौवन सब वार चुकी ।
वह बाह्य मिलन भी सफल बने
जिन चरणों पर सब हार चुकी ॥३५॥

प्रिय - प्रेम प्रपूरित करने को—
निज अन्तर खाली कर देखा,
भर गया उसी के भावों से,
उसमें अब कहाँ अन्य लेखा ॥३६॥

यौवन, उभार, तन - रति - रसता
सब प्रेम - उदधि के घन - वर्षण,
चपला - सी सस्मित सधि - बीच
दिखलाते मोहक जीवन - क्षण ॥३७॥

पावन निशीथ - दर्शन - वेला
प्रिय - मिलन - भाव में आयेगी।
वह प्रथम मिलन की रचना क्या—
नयनों में सदा समायेगी ? । ३८॥

मधुता समेत प्रिय - मिलन भला
क्या बुरा कि जिससे सुमन खिले,
जिससे यौवन की भूख मिटे
शृंगार - कला का भाव मिले ?" ॥३६॥

दमयन्ती अपने भावों की—
धारा में डूबी जाती थी,
मन की मोहक चल लहरों पर
निज मृदुता में बल खाती थी ॥४०॥

नल भी मन के शृंगार – बीच
यौवन की रेखा खींच रहा।
अभिलाषाओं के रंजन में—
चित्रित करता छवि-रूप महा ॥४१॥

यौवन - घन में छवि - चपला की
मुस्कान सहज क्या हो सकती,
आकर्षण भर क्षण प्रकट और
फिर गोदी में किस छिप रहती ? ॥४२॥

उसको वसन्त के प्रिय मधुमय—
संकेत चतुर्दिक जान पड़े ।
मधु से मधुता के मिलन - भाव
संकेतों से पहचान पड़े ॥४३॥

कदली - पत्रक सुस्तंभ परस
अन्यत्र तनिक लहरा जाते,
युगता के प्रिय संकेतों पर
उरु की सुढार दरसा पाते ॥४४॥

कचनार सुघर कलियों में निज
यौवन - सिंगार लख मुस्काते,
कोमल - दल के मृदु हाथों से—
निज तन्मयता में क्या पाते ? ॥४५॥

शीतल समीर झकझोर तनिक
लतिकाओं से क्या कह पाता,
जिनसे पाकर तरु बाहु - पाश
बेसुध सिहरन से झुक जाता ? ॥४६॥

वह मधुरस की प्याली लेकर
कलिका गुलाब की हिलती - सी
अलिगुजनमय प्रिय चुम्बन पा
मादक विकास में खिलती - सी ॥४७॥

वह "कहूँ कहूँ" कह कोयल भी
अब कौन कथा कहने वाली,
जिसका स्वर सुनकर झूम रही
लतिका - लिपटी तरु की डाली ? ॥४८॥

नव कुंज - द्वार के कलश युगल
क्या कह जाते निज रचना मे ?
जघनिल माया चित्रित करते
कामुकता - भरी कल्पना में ॥४९॥

सुमनों की रंग - विरंगी वह
छवि - छटा लता की बाँहों से—
लिपटी मुस्कानभरी कहती
मृदु मौन कथा उर - चाहों से ॥५०॥

पल्लव की ओट लिये मुडकर
क्या सरम सारिका कह जाती ?
मोहक बोली में जादू भर
क्यों छिपती - सी कुछ शर्माती ? ॥५१॥

नव रागमयी मुस्कान मधुर
कलिका विकास में अब भरती ।
उस सरस भाव से झूम, अहा !
तितली मादक नर्त्तन करती ॥५२॥

पत्तो की लाज त्याग कोमल—
सेमल की कलियाँ झाँक रही,
कीरो की सरस ठिठोली भी—
भावो से भर कर आँक रही ॥५३॥

दिन की लीला का भाव सहज
बन रहा निमंत्रण रजनी का,
तारक - स्वरूप - मणि-भावों में—
भावी सुहास शशिवदनी का ॥५४॥

वह चन्द्र - कला की वेला भी—
सस्मित स्वरूप ले आयेगी,
नल सोच रहा, — छवि रेखा पर
कब मिलन - विन्दु धर पायेगी। ५५॥

अम्बर की बाँहों में वह शशि—
निशि रूप - कथा नव कह लेगा,
भावों के ललित विरल घन से—
लीला रच क्या रस भर देगा ? ॥५६॥

आशाओं के मृदु भावों में—
छवि की वह थिरकन क्या होगी ?
तन-मन-विकास में तिरती -सी—
आती वह सिहरन क्या होगी ? । ५७॥

भावी प्रसंग के जीवन में—
भावों की झाँकी क्या होगी ?
उस मिलन-विन्दु के पार स्वयं
इच्छा बचकर फिर क्या देगी ? ॥५८॥

यह सोच हृदय विह्वलता में—
सन्ध्या की झाँकी पाने को,
नल पहुँचा शान्त सरोवर - तट
सकेत सरस पा जाने को ॥५९॥

देखा तब पिंगल - किरणों से—
मिलकर लहरो का मटकाना,
यौवन - उभार की माया में—
स्वीकार - कला से नट जाना ॥६०॥

छवि - कलित करों के पाश - बीच
पंकज - लीला बल खाती थी ।
यौवन की रागमयी हलकन
मृदु लहरों में मिल जाती थी ॥६१॥

मुख - श्री जैसे शृंगार - बीच
सिन्दूरी छवि - रेखाओं से—
सन्ध्या - बेला थी खीच रही
पंकज के सहमित भावों से ॥६२॥

खञ्जन वह तीर लता - ऊपर
चञ्चल लुक-छिप कर उड़ जाता ।
किन नयनो के मृदु भावो से—
व्रीड़ा - विलास ले शर्माता ? ॥६३॥

बुलबुल लतिका की बाँहों मे—
घुस - पैठ - कला क्या सीख रही ?
कलियो को कोमल कम्पन दे—
आलिंगन - रत - सी दीख रही ।६४॥

सत्कार कपोती का पाकर
प्यारा कपोत क्या रस पाता ?
आभार प्रकट कर डाली पर
मधुरस - भावों से भर जाता ॥६५॥

सूरज तरु - राजि - फुनगियो पर
कर से स्पर्शित कर सुमन - माल—
रच रहा कि वन्दन - भावों में—
पक्षी कलरव कर हों निहाल ।।६६।।

वह सरल सारिका प्रिय के निज —
भावों में भरती मोद - गान ।
चलती सन्ध्या की बेला में
कर सके कि जिससे प्रेम - पान ।।६७।।

वह कीर अरे ! किन भावों में—
ले प्रिया पहेली बूझ रहा ।
उसकी आँखों में भावों का—
वह सरस वेश क्या सूझ रहा ? ।।६८।।

यह भौरा मादक भावो में—
सहमित कलियों को चूम - चूम—
सकेत कौन - सा देने को—
आता समीप है घूम - घूम ।।६९।।

कोमल पाँखो के जादू से—
नयनों में मधुरस भरती - सी
परिरंभ - कला का भाव जता
तितली सुमनों से मिलती - सी ।।७०।।

उस अर्द्धनग्न नत डाली पर
सकेत शकुन का करता - सा,
वह काग कौन मंत्रणा लिये
विश्वास हृदय में भरता - सा ? ।।७१।।

वह सरिता-जल लहरित बेसुध
भावों में भर करता विहार,
निज दिव्य करों में भर गुलाल
सन्ध्या दर्शाती ललित प्यार ।।७२।।

वह खग - दल, अरे, उड़ा क्योंकर
नभ - पथ से करता नीर - पार ?
सरिता की उर्मिल बाँहों से—
क्रीड़ित क्या लखने को कगार ? ।।७३।।

विह्वल स्वर से क्या बोल रहा
वह तीतर भोला जल पीकर,
सन्ध्या की छवि क्या पा लेगा
पैदल चलकर कगार - ऊपर ? ।।७४।।

निर्मल जल में तिर मीन मधुर
नयनों की कला दिखा जाते,
हेमाभ कलित कर - रंजन में—
क्या सन्ध्या की श्री लख पाते ? ।।७५।।

स्वर्णिम लहरें मदमाती - सी
सैकत बाँहों की रजत - क्रोड़
मुस्क्याती कल - कल ध्वनि करती
लखती जाती ले मधुर मोड़ ।७६।।

लहरें क्या सोचे भूत - कथा,
भावी पथ का विस्तार कहाँ ?
बस, वर्त्तमान में लहराना
उनके जीवन का भाव रहा ।।७७।।

कुछ समझ रहा राजा नल भी
जीवन का मार्ग सरसता का
जीवन तो है, बस, वर्त्तमान
पथ वही सजग निजवशता का ॥७८॥

फिर लगा निरखने सन्ध्या की—
छवि-कला रंगिनी माया में।
नाना रंगो की लीला लख
सुधि कहाँ रही निज काया में ? ॥७९॥

कलरव खग - गान - कला विलसित
तरुवर शिखाग्र मृदु झोके से—
पीताभ सुरंजित श्यामलता—
में भरते भाव अनोखे - से ॥८०॥

आकाश - विहारी पंखों के—
दोलन की छटा निराली थी,
सन्ध्या - श्री रहे बटोर नभग,
अनुपम प्रसरित छवि-लाली थी ॥८१॥

नल सोच रहा, "वह मानव कवि,
सुन्दर निसर्ग के पथ उसके
विषयों के घेरे से उठकर
बाहर मन कर जो देख सके' ॥८२॥

फिर भी मन में विषयों वाली
बन गयी रंगिनी छाया थी,
सिर पर सवार हो विचर रही,
उसकी अपनी मृदु माया थी ॥८३॥

सोचा नल ने, —"अब जीवन में—
उसकी रसता भी जान सकूँ,
उसके स्वदेश की क्या लीला,
अच्छा होगा, पहचान सकूँ ॥८४॥

जब दिया दैव ने मुझे सुखद
विषयों - हित सरस रागिनी भी
तो निश्चय राग मिलाने पर—
वह होगी भाव - संगिनी - भी ॥८५॥

दिन के विलास का अन्त जान
उस निशि पर नृप का चला मनन,
जिसमें अन्तर - गति - राहों के—
संगम पर भावी भाव - मिलन ॥८६॥

दिनमणि मोहक निज कला लिये
अस्ताचल के उस पार हुआ,
पूरब से रजनी की झाँकी—
का शनैः शनैः आसार हुआ ॥८७॥

राजा अब वापस लौट चला
मणि - दीपों मे छवि - शरण जान,
आशा भर रूप - विलास - भाव—
का उनको ही द्युति - करण मान ॥८८॥

निशि का प्रवेश निज वैभव में—
सस्मित शशि-कलित निखार लिये,
विलसित जगमग मृदु रचना में—
हो सका सहज शृंगार किये ॥८९॥

रस-गानमयी उस रजनी में—
विकसित सुहाग था फलित आज,
मधु छवि का पावन मिलन जान
सज्जित हो ले ज्यों ललित साज ॥९०॥

तत्परता अपने यौवन में—
मधुमय विकास भर खिलने को,
छवि - साज-भरी ज्यों निरख रही
आशा भर रसता मिलने को ॥९१॥

दमयन्ती मोहक कलना से—
शृंगार-कला मे अंकित - सी
कोमल सभाव मूर्च्छना सदृश
मन के तारो में झंकृत - सी ॥९२॥

मोहक छवि - राग - विकीरण में—
दमयन्ती सम दमयन्ती थी,
मणि - कला - बीच चपला समान
नव झमकभरी गति करती थी ॥९३॥

राजित निशीथ - मणि-जगमग मे—
राजा नल पहुँचा कक्ष - बीच
द्युति-फलित कला के चित्रण में—
बाला रसता देती उलीच ॥९४॥

अँग-चालन में लहरित विकास—
अनुपम शोभा का सार लिये—
मणि - दीप - प्रभा में चमक उठा
यौवन का मादक भार लिये ॥९५॥

ऐसा विकास शुचि नव रस ले—
किस परम कला से मिल आया,
क्षण-क्षण नवीनता की गति में—
नव मिलन - विभा पर खिल पाया ॥९६॥

नयनों का लाभ फलित नृपवर—
उस कलित प्रभा में आँक सका।
कुछ समय स्वयं को भूल सहज
अनुपम उस छवि में झाँक सका ॥९७॥

पाने की कटुता भाग चली
क्षण भर आपस - छवि - दर्शन से।
देना ही देना साथ रहा
प्रिय रूप - फलित आकर्षण से ॥९८।

अम्बर से युग शशि उतर पड़े
मुखमंडल बन ले अमी - सार
जगमग आभूषण - लसित अंग
तारक-विकास का ले निखार ॥९९॥

नल सोच रहा — 'सुन्दरता को—
सुन्दरता का क्षण आज मिला,
दमयन्ती के तनरूप विकस
मादक मधुता के साथ खिला' ॥१००॥

नयनो से चारु चपल चितवन—
मिल चार कलाओं में निकली।
छवि मूर्त्तिमती पति - चरण लाभ—
कर भावभरी - सी लगी भली ॥१०१॥

कल कुंभ सदृश उर से खसकर
अञ्चल की चरणों पर फहरन
आशीष बचन के भावों में—
फिर बाहु - पाश, उर-आलिंगन ।।१०२।।

सुस्पर्श सरल मृदुभाव भरे
ममता की मादक माया में,
गलबाँही के शुचि भावों तक—
मधु-चुम्बित कोमल काया में ।।१०३।।

मधु-कुंभ विकास कला से भर
उर उमड़ चला मृदु छोह भाव,
संस्पर्शन की नव ललित कथा—
में आ पहुँचा जीवन - सुदाँव ।।१०४।।

ममता की मधुर कहानी कह
जीवन - सरिता का कर मिलाप;
छवि-मादकता की नव लहरें
आशा - संगम तक गयी व्याप ।।१०५।।

छविमयी वासना की प्याली
तन - मन - विलास भर पायी-सी,
पर मन की इच्छा कहाँ भरी
वह नव सुराग पर आयी - सी ।१०६।।

तन्मयता प्रेम - कहानी की—
कोमल विलास में मिलती - सी,
अन्तर की मोहक लतिका में—
शृंगार-सुमन बन खिलती - सी ।।१०७।।

छवि दोनों ओर उमडती - सी
नयनों में सहज न अँट पाती,
रस - भावों की कोमल छलकन
श्रम-विन्दु भाल पर बन जाती ॥१०८॥

आपस के मधुरस - पान - हेतु
शशिमुख द्वय सहज मचलते थे
उस मिले दाँव से युगल चन्द्र
अलि-पंकज-स्वर मे मिलते थे ॥१०९॥

विकसित उरोज - कलिकाओं तक
नयनों के भ्रमर न जा पाते
कर - पल्लव के ही भावों में—
दूरी से मुदिता पा जाते ॥११०॥

फल कुदरूप दाड़िम - रसता
ले पाटल छवि मे विकसित - से,
मादक कपोल यो भावभरे
अधरों के सँग रस-विलसित-से ॥१११॥

शशि - पोषित घन से सुधा लिये
नागिन - सी रुक मृदु अधरों पर,
रस - पान कराती - सी बेसुध
वह वर वेणी माती जी भर ॥११२॥

उस केश - राशि श्यामल घन से—
नयनों का मौन मधुर नर्त्तन,
मधुमत्त शिखी के भावों में—
मन की नव लिये मौन थिरकन ॥११३॥

तन - काम–केन्द्र – मृदु–अगों में—
मधुरस की प्याली छलक चली।
नव दम्पति के मादक मिलाप—
में जीवन - रस की झलक मिली ।।११४।।

आभूपण छवि की ममता मे—
संस्पर्शन तक दे साथ रहे
कुछ बाधा की रेखाओं में—
भावों के साथ सनाथ रहे ।।११५।।

गदकारे वर्ण गुलाबी तन
वसनों की बाधा छोड़ चले
जघनोरु विलास-कला से मिल
आपस में करते होड़ भले ।।११६।।

उर - हार सहम कुच - बीच सिमट
निर्वसन जान लज्जित होता,
कंचुकी देख बन्धन - विहीन
अञ्चल कतरा विस्मित होता ।।११७।।

परिधान कलित कल खिसकन में—
किकिणी मधुर स्वर बोल उठी
कोमल विलास, तन लसित जान
मादकता का स्वर घोल उठी ।।११८।।

नूपुर अपना स्वर - ताल त्याग
मनमानी ध्वनि में बजता था,
सुनने वाले उर लीन कहीं
यह जान तोष मन करता था ।।११९।।

व्रीड़ा से मिल मुस्कान मधुर
छवि की धारा में मिल जाती।
नयनों से लेकर बाँकपना
मुदिता लहरों में तिर पाती ॥१२०॥

कंगन की झनक निराली वह
छवि-संगम से भावित होकर,
क्षण भर चंचल क्रीडा तजकर
रस-मग्न हुई निज सुधि खोकर ॥१२१॥

अन्तर-गति के प्रिय बन्धन पर
तन-वसन सभी निर्बन्ध बने,
बन्धन-विहीन भावों में बँध
क्षण समझ सके मन सुख अपने ॥१२२॥

इच्छानुसार नर-सुख-विलास—
में दमयन्ती कुछ जान सकी,
शृंगार समर्पण क्या होता,
मन के तल पर पहचान सकी ॥१२३॥

मन के पतंग छवि-दीपक के—
नव रूप-कला में भूल पड़े।
पर वह तो लौ शीतल जिसमें
जीवन रस पाकर सहज अड़े ॥१२४॥

स्वर्णिम मिलाप-निशि-लीला में—
मिल सका भाव जो अपना था।
नल को वह छवि साभार मिली
रच सका जिसे मृदु सपना था ॥१२५॥

मृदु हास लिये अन्तर - घन की—
चमकी डोरी मुस्कानमयी,
वह झमक निरन्तर नयनों में—
रूपित करती छवि ध्यानमयी ।।१२६।।

जीवन - वसन्त की हरियाली
सुमनों के मधुर विकास लिये,
आलिंगन के अलिभावों में—
मिल पायी प्रेम - सुपास लिये ।।१२७।।

आशा भर मिलन विचारो का—
हो सका हृदय - तन - देश महा ।
भावों के अपने चित्रण का—
मधुमय विलास क्या शेष रहा ? । १२८।।

सपनों को पा साकार आज
नृपवर छविसर में विलसित हो—
लहरो में क्रीड़ित सुमनों - से—
पा सके तीर मधु - लहरित हो ।।१२९।।

वह काम - अवस्था जीवन की—
दोनों ने जिसमें सुख देखा,
भावी औ भूत - विचारों की—
मन से तजकर चिन्तन - रेखा ।।१३०।।

रजनी अपनी लीला समेट
अनजाने पथ से चली गयी।
दिन आया अपनी प्रभा लिये
रूपित रचना कर नयी - नयी ॥१३१॥

सुखमय विलास, सुखमय जीवन
नल - दमयन्ती का अपना - सा
साकार हुआ सम्मुख विकसित
मधुमय मन-मोहक सपना - सा ॥१३२॥

आनन्दभरे जीवन - क्रम में—
दमयन्ती प्रिय - सँग धन्य हुई
निज मन रखकर पति - भावों पर
जीवन से सहज अनन्य हुई ॥१२३॥

निसर्ग-दर्शन सर्ग

सान्ध्य विहार

बढते अनुदिन के भावों में—
राजा ने अनुभव कर देखा,
मन के तल पर तन-भोग-बीच
मिल सकी न शान्तिमयी रेखा ।।१।।

दमयन्ती की वह सुन्दरता
यौवन की बाँहो मे पाकर,
पाकर रुचिभर तन-रूप-साज
सन्तोष न देखा, रहा किधर ।।२।।

सौन्दर्य देखने की आँखे—
शुभ निर्मलता जब पा जाती
छवि के परदे में छिपी हुई
वह परम कला तब लख पाती ।।३।।

मन स्वार्थ-विन्दु पर सुन्दरता
जो खींच रहा तन-भोग लिये
आनन्द कहाँ उस जीवन में ?
क्या होता छवि-संयोग किये ? ।।४।।

नल-दमयन्ती को भोगो की—
माया अवसर पर खूब मिली,
पर अन्त निरन्तर भोग-भरी
कायिक गति पर कटु ऊब मिली ।।५।।

दोनों रहस्य यह समझ सके
आपस में भोग-विलासों से,
कायिक भोगों में तृप्ति कहाँ
जो मिल ले सुखमय श्वासों से ॥६॥

वह काम-शक्ति छवि-झाँकी में—
तन-रति-विलास से ऊपर चल—
सौन्दर्य-प्रेम के शुभ पथ पर
आनन्द-कला पाती निर्मल ॥७॥

तन-छवि के पावन भावों में—
दोनों के शुभ आचार मिले,
नैसर्गिक सुषमा के तल पर
दोनों के अन्तर सुमन खिले ॥८॥

मन के रतिरंजित भावों की—
मोहक माया पहचान सके,
भोगों के पथ से चलकर वे
दुख-भ्रामक पथ भी जान सके ।९॥

भोगों के पथ अनुभूति मिली
दृढ़ता की उर-निश्चय वाली,
तन-रति-विलास के ऊपर वह
जिससे भरती जीवन-प्याली ॥१०॥

नाना निसर्ग के रूपों में—
छवि-नट विलसित-सा खेल रहा,
दर्शन की पावन आँखों से—
भावों भर करता मेल रहा ॥११॥

शुचि प्रेमभरे साधन-पथ पर
नल दमयन्ती के भाव चले।
अपनी दर्शन - रेखाओं से—
चित्रित निसर्ग - छवि-भाव भले ।।१२।।

नल ने पूछा दमयन्ती से
"हे, प्रिये ! आज इस सान्ध्य काल,
क्या ही अच्छा होता, मिल हम—
हो चलें प्रकृति-श्री में निहाल ।।१३।।

कुछ स्रोत सरल श्री - दर्शन के—
लख लें सन्ध्या की लाली में
छवि-भाव मधुर मादकता का—
भर लें अन्तर की प्याली में ।।१४।।

सन्ध्या का सुकलित आलिंगन
उस क्षितिज - राग की बाँहों में—
कैसे होता, वह देखें हम
कैसे सजती निज चाहों में ।।१५।।

हे, देवि ! सन्ध्या - काल की, छवि से भरी रस-लालिमा—
देखें, यही मन में हुआ, जिसमें न हो कटु कालिमा
जिसके गमन की पीर ले, निशि - पथ निरखता नभ सिहर
शशि - दीप ले आँखें सहस, आँसू गिराती रात भर ।।१६।।

अपनी प्रकृति के भाव में, धर रूप कौन विलस रहा
सूरज चकित नित भाव भर, चलकर कलित छवि लख रहा
अम्बर सहज ले श्यामता, वह रूप किसका धर रहा ?
जग के फलित शृंगार में, रस - राग क्यो नित भर रहा ? ।।१७।।

खग-गान में मधु भाव भर, तरु की शिखा में झूमता
भर कर सुमन मे हास मृदु, बनकर भ्रमर नित चूमता
कलिका सरस मृदु राग - हित, किसका सुपथ नित देखती ?
जिससे सुरंजित तितलिका, माती परस नित थिरकती ॥१८॥

वह नाद पंचम कोकिला, भरती सरस किस ताल पर ?
किसको सुनाती गान वह, मोहक हृदय में भाव भर ?
अमराइयों के भाव में, वह गूँज किसकी चल रही ?
अन्तर - श्रवण से सुन जिसे, रसता सभाव विकल रही ॥१९॥

लतिका विटप से लिपट कर, किसकी कथा नित सुन रही ?
शुक - सारिका के प्रश्न पर, उत्तर सहज क्या गुन रही ?
पल्लव - सभा मे बैठ खग, मधु - पवन से क्या पूछते ?
सन्देश पा आनन्द का, फिर मौन हो क्या सोचते ? ॥२०॥

छवि - फलित भावों की कला, में कौन नर्त्तन कर रहा ?
मोहक सुरजित चित्रमय, अनुराग रूपित कर रहा ?
सज्जित क्षितिज के छोर पर, सस्मित स्वयं श्री लख रहा ?
पश्चिम दिशा में छिप मधुर, उद्गार कौन परख रहा ? ॥२१॥

इतिहास जिसकी बदलती, मोहक निशानी खोजता
वह सान्ध्य गीत सभाव रुक, निर्वेद भर नित विरचता।
वह लालिमा सिन्दूर की या शक्ति की सकेतिका ?
किसने कला - शृंगार की अनुपम सँजोयी पेटिका ? ॥२२॥

हे देवि ! जीवन की कला, सचमुच प्रकृति में विलसती।
शृंगार की मादक छटा, अनुराग - घन से बरसती।
मुस्कान चपला - भाव में, नव रूप पर जो निरखती ?
वह कौन जिसको लालिमा, शृंगार पाकर परखती ? ॥२३॥

नृपवर लेकर निज प्रिया साथ
भावित होकर लख दृश्य सुघर,
प्रमुदित उपवन की ओर चला
सन्ध्या का भ्रमण-काल लख कर ।।२४।।

सन्ध्या सिन्दूरी कला लिये
आशा का पट रंजित करती,
कलरंग - विभा की लाली में—
नव प्रकृति - साज सज्जित करती ।।२५।।

अम्बर - परिधान पहन श्यामल
फहरा मादक छवि क्षितिज - छोर,
ज्यों सन्ध्या-श्री अञ्चल पसार
उनको पुकारती विभा - ओर ।।२६।।

सुमनिल विकास, पल्लव-लालित,
उपवन का ले कञ्चुकी साज,
आलिगन को थी बुला रही—
सन्ध्या किसको छवि में विराज ? ।।२७।।

नव भाव - रचित सौन्दर्य - बीच
मन्थर गति कला सँवार रही
दम्पति - तन की छवि-छलकन लख
पद - चारण रही सँभाल मही ।।२८।।

बोला नल धीरे, "प्रिये ! निरख
नभ विहग जा रहे नीड़ - ओर
दिनभर मस्ती के भाव विचर
जीवन-छवि का लख शान्ति-छोर ।।२९।।

नभ की आँखों में जादू भर
पंखों में भर कोमल दोलन,
पाते छवि सरस विहार - बीच
भोले भावो के विहग प्रमन ॥३०।

धरती की माया से उड़कर
नभ से फिर धरती निरख रहे,
निष्काम - भाव में खिलती छवि—
नीचे ऊपर तक परख रहे ॥३१॥

"मैं को तज कटुक दासता खग
लख रहे अकिचन के स्वर में।
रूपित निसर्ग में खेल रहा
छविधर कोई भावित हर में ॥३२॥

किसकी छवि से भावित होकर
सन्ध्या का स्वर्णिम प्यार चला
नभ मोहक नाना रूपों में—
किस पर करता शृंगार, भला ! ॥३३॥

अम्बर में कला - विहारी बन
विलसित सन्ध्या के भावों मे,
अनुरंजन का रस पाते खग
उड़कर मादक आशाओ में ॥३४॥

हे, प्रिये ! देख वह विहग - पाँति
किरणों पर चढ़ किस देश चली,
सिन्दूरी मदिर विभा में खिल
उड़ती कलियों - सी लगी भली ॥३५।

अपने मानस की रची हुई
जिस पथ मधुरंजित कला रही,
सन्ध्या आँखों के इंगित में—
उस ओर खगों को बुला रही ॥३६॥

ऊपर चढ़ती मधु-झड़ियों-सी -
किरणों में होकर स्नात नये
खग भाव परख प्रिय जीवन के
आनन्द-पथिक, अज्ञान नये ॥३७॥

हे, देवि! देख वह पंख झाड़
अँगड़ाई ले द्विज डाली पर,
साथी खग के पर-दोलन में
क्या निरख रहा उस लाली पर ॥३८॥

सज्जित निसर्ग के बीच मधुर
नर्त्तन का वह संगीत कौन,
जिसको सुनकर खग पंख फुरा
अन्तर-विभोर हो गया मौन? ॥३९॥

रवि-मंडल जिसके भाल-बीच
बन गया सुघर अग्नि बिम्ब लाल,
जिसके समीप वह विहग-पंक्ति
जा रही बनी शुचि सुमन-माल ॥४०॥

छिट-फुट छितराये विहग-वृन्द
दर्शित ज्यों चपल सुमन-वर्षण
किसकी झाँकी में हो निमग्न
भर रहे अलौकिक आकर्षण? ॥४१॥

मुड, देख, प्रिये ! उस झुरमुट पर—
वह वृद्ध शकुन ले रहा धूप
खोये यौवन को सन्ध्या की—
मोहक छवि में लखता अनूप ।।४२।।

मधुमय किसके वह दर्शन में—
भूला यौवन प्रस्ताव किये,
रह - रह कर पंख फुरा देता
मस्ती के अमनी भाव लिये ।।४३।।

सर से निज सरस संतरण तज
वह गया हंस क्यो डाली पर ?
कर - रंजित स्वर्ण - हंस हो लें,
इसलिये निरखता क्या जी भर ? । ४४।।

मुस्कान मधुर सन्ध्या - श्री में—
मुख - पंकज - द्वय से निकल मिली
पाकर रहस्य की रसता ज्यों
अनुराग - लता की कली खिली ।।४५।।

बोला नृप, प्रिये ! देख सम्मुख
सन्ध्या समोहन - रूप लिये
नीचे - ऊपर तक विलस रही
मधुरंजित नाना रूप किये ।।४६।।

तू निरख रही वह हंस - रूप,
मन की लीला क्या बदलेगी ?
आकर्षण की मृदु माया मे—
क्या प्रेम - कहानी फिर होगी ? ।।४७।।

उत्तर में केवल मधुर हास
पीताभ कला में खिल पाया,
नल के मानस की लहरों पर
विकसित शतदल ज्यों हिल पाया ॥४८॥

रसलीन मधुप के भावों में—
नृप पुनः सँभल कर बोल उठा,
उस विहग-भाव में व्यंग दिखा
अन्तर में नव रस घोल उठा ॥४९॥

"बैठा एकान्त फुनगियों पर
सुमनों से खग करता सलाह,
संयोग - फलित सन्ध्या - श्री में—
उसको छवि से कुछ नयी चाह ॥५०॥

वह देख, गझोर लताओं में—
लावों की लुका - छिपी कैसी ?
फिर एक साथ अम्बर धरते
फूलों में मधुर बिखेर हँसी ॥५१॥

तरु से लिपटी वह लता प्रिये !
निज यौवन में निर्भर हुई।
सुमनों के मिस मृदु हासभरी
क्या निरख रही साभार हुई ? ॥५२॥

पत्रों के कर इंगित करते
सुमनों में किसकी छवि - रेखा ?
मादक स्वभाव में झूम रहे
किन नयनों से किसको देखा ? ॥५३॥

सेमल की डाली पर तोते
दिन भर प्रयास से हो उदास,
सन्ध्या की प्रसरित लाली में—
उड़कर अब पाते सुखद श्वाँस ॥५४॥

सन्ध्या का सम्मुख भाव निरख
सुमनो से विषय - राग तजकर,
निज अहंकार अब भूल सहम
भागे शुक पथ गहरे अम्बर ॥५५॥

अब लेन - देन के ऊपर उठ
अम्बर - श्री में निज रसता से—
उड़ रहे नभग आनन्द - मग्न
हट विषयों की परवशता से ॥५६॥

हारिल अब कला - कलोलभरे
पत्तों को कम्पित कर देते,
फुरकार परो के भावों में—
भर रूप - छटा मन हर लेते ॥५७॥

चंगुल - तृण - ग्राही क्या जाने
कटु स्वर्ण - ग्रहण की मोह-बला ?
जब खगी - सहित क्रीडा - विभोर,
तब क्यो वह सम्मुख मोह, भला ॥५८॥

क्या पत्रक विजन डुलाते हैं
क्रीड़ित खग-दल को श्रमित जान ?
या उनको हिल - डुल समझाते
तन-विषय-मग्न, मन-भ्रमित मान ! ॥५९॥

रंजित सुरंग श्यामल नभ से—
वह श्वेत कपोतक-दल आया,
किसके मानस का भाव लिये
चल जलज-रूप लहरित भाया ? ।।६०।।

सागर-बेला रवि-कर-कलिता—
जिन भावों से मादक बनती
जिस छवि की लहरों से टकरा
अञ्चल-श्रृंगार सफल करती ।।६१।।

क्या वहाँ पहुँच ये खग भोले
आये ले छवि-सन्देश भले ?
हे, देवि ! सहज श्रुति-नयनों में
सन्देश-कला वह तो भर ले ।।६२।।

जिसकी सितता से विस्मित हो
वह काग-मण्डली सिहर उठी,
निज कटुक कालिमा से लज्जित
उड़ बाँस-शिखा से भभर उठी ।।६३।।

क्या हेम-कलित वह श्याम-विभा
लखकर पक्षी होते ऊपर ?
मधु-पीत सुरंगी आभा से—
जा रहे गगन कर दोलित पर ।।६४।।

किस श्यामा की मुस्कान, प्रिये !
सन्ध्या के रूप निखर पायी ?
श्रृंगार-कला से स्वरता ले—
किस अन्तर से मिलने आयी ? ६५।।

वह कर्म-लोक की शान्ति कौन
जो सन्ध्या में आकार बनी,
किस मन-मोहन की मुरली से—
ध्वनि इंगित कर स्वर-ताल बनी ॥६६॥

बहु रूप-कुशल नर्त्तक – कोई
नाना रूपों में नर्त्तित सा
शृंगार - साज अब देख, प्रिये !
उसका सन्ध्या - श्री में विकसा ॥६७॥

उस क्षितिज-छोर-तरु-राजि-छटा—
में किसकी आभा नाच रही,
जिसके नूपुर - ध्वनि-भावों को—
उर-कलित रागिनी बाँच रही ? ॥६८॥

किसके भावों की कला देख
मन का आसन अब हिल जाता ?
आनन्द - सिन्धु है कौन सहज
जिसमें वह तिर गोता खाता ? ॥६९॥

विश्रान्ति - लक्ष्यगत भावों से—
सन्ध्या की लीला राज रही।
निज मधुर विभा की माया मे—
आशा लख भरती साज रही ॥७०॥

गोपाल लिये निज सुरभी - दल
कल हेम - विभा मे चल पथ पर,
वत्सों की गति से प्रमुदित हो
अब छोड़ रहे वंशी के स्वर ॥७१॥

गायों की मधुर घंटिका - ध्वनि
वंशी - वादन के भावों में—
शिखरो पर खग - दल भावित कर
भर रही सूचना गाँवों में ।। ७२।।

स्वर्णिम किरणें ले गान मधुर
किसके कानों तक जा पातीं
सन्ध्या सस्मित छवि - भाव लिये
किसको रसता यह समझाती ? ।।७३।।

जिस मस्ती में हुंकार वृषभ
सुरभी - दल में भरता चलता
उसकी बहार में कौन छिपा
नभ में सुदूर तक बल भरता ? ।।७४।।

श्रद्धापूरित उन गायों में—
विश्वास वृषभ किससे भरता,
जिससे उनमें नव रसता का—
मधुप्राण प्रवाहित हो जाता ? ।।७५।।

रज - रंजित स्वर्णिम आभा में—
किसकी मृदु देख रहा थिरकन,
वह भाव - मुग्ध तीतर भोला
कुछ बोल उठा स्वर-ताल-प्रमन । ७६।।

डाली से उतर मोर नीचे
पर सुकलित तनिक झाड़ लेता,
सन्ध्या - स्वरूप के वैभव में—
भर भाव न सहम आड़ लेता ।।७७।।

शशि-चित्रित पर की विभा दिखा
किसके आरवगत भावों में—
सन्ध्या से कर छवि-लेन-देन
जाता पैदल तरु - दावों में ॥७८॥

क्या समझ रहे कुछ पशु - पक्षी
आनन्द - पहेली जीवन की,
जिसके हल पर शुचि शान्ति मिले
कटु रीति मिटे अपने मन की ? ॥७९॥

हे, प्रिये ! देख ले उपवन में—
प्रसरित अब छटा निराली-सी,
विश्राम - हेतु मोहक थल लख
सचमुच प्रशान्ति ज्यों पाली-सी ॥८०॥

सुमनों में भर नव राग - कला
भ्रमरों में प्रेम - कथा कहता
तितली के कोमल पंखों से—
निज श्री में कौन थिरक रहता ॥८१॥

दिन में तन - भूख मिटाकर फिर
किस मोहक छवि की चाह बनी
भोले पक्षी आते सगीत
क्या उपवन - श्री मे राह बनी ? ॥८२॥

किरणों के जादू में कलियाँ—
वह परम, रूप क्या पाती है,
भूली विकास में हृदय खोल
जिसकी छवि से मिल जाती है ? ॥८३॥

बेसुध विकास में भ्रमरों को
रस रूप कहीं कुछ मिल जाता
लखकर सद्मोह जिसकी रसता
किसलय का अञ्चल हिल जाता ।।८४।।

शृंगार - विक्रीड़ित यौवन में—
सम्मुख भ्रमरों के भाव, देख।
हे, देवि ! सान्ध्य गति - बेला में—
गुन - गुन स्वर से प्रस्ताव देख ।।८५।।

चल रहा गगन में वेद - गान
पक्षी स्वर पाते डालों पर,
किन परियों की मृदु नूपुर-ध्वनि
होती किन छवि-गिरि-ढालों पर ? ।।८६।।

आ रही गगन - रेखाओं से—
रंजित किरणों पर चढ़ी हुई
क्या लख पाते हम वह थिरकन
किस रव में आती बढ़ी हुई ? ।।८७।।

तरुवर - शिखाग्र पर रस-विभोर
खग - सभा मुदित कुछ बूझ रही,
जिसकी आखों से दिव्य कला
छवि के आश्रय में सूझ रही ।।८८।।

हम धरती की माया में रत
ऊपर न कहीं कुछ परख रहे,
निज अहंकार की आँखों से—
वासना पली बस निरख रहे ।।८९।।

सुन्दर निसर्ग की रचना का—
संकेतक उपवन क्या कहता,
निज सुन्दरता के परदे पर
सस्मित रस-भाव कौन भरता ? ।।६०।।

क्या कोई ऐसा छवि - नर्त्तक
नाना विधान धर खेल रहा,
फैलाकर अपनी बाँहों को—
बहु रूपों में कर मेल रहा ? ।।६१।।

घनश्याम कौन-सा वह छविधर
धरती पर रूप बरस जाता,
होकर अरूप वह सर्वरूप
निज महाशून्य में गति पाता ।।६२।।

हे, प्रिये ! सहज आनन्द-राशि
जीवन का एक मात्र जीवन,
कैसे हम उससे अलग हुए
लेकर दुखमय कटु भ्रामक मन ।।६३।।

सम्मुख निसर्ग की हर लीला
संकेतभरी उर खीच रही,
पाता नर भाव – पथिक होकर—
वह छवि जो दिशा उलीच रही ।।६४।।

उपवन के शान्त सरोवर में—
जल - पक्षी दिन भर कर विहार,
इंगित मराल की जोड़ी का—
पा पकड़ चुके मधुमय कगार ।।६५।।

चकवा लखकर दिवसावसान
दिन-रसिक प्रिया से कर सलाह,
निज पख डाल ऊपर क्षणभर
अब सोच रहा निशि-विरह-राह ॥९६॥

श्यामल पट पर लाली-रंजित
इस काल प्रतीची भास रही,
रवि को पाकर अस्ताचल पर
छवि-स्वर में भरती श्वाँस रही ॥९७॥

जग के सुढार में श्री भर कर
सूरज की किरणे शान्त हुईं,
छवि-राग - कला में क्रीड़ित हो
रवि-मडल में एकान्त हुईं ॥९८॥

छिपती किरणों की माया लख
अब "कहाँ - कहाँ" कर काग रहे,
निज भाव-रंग की कटुता तज
किसमें भरते अनुराग रहे ? ॥९९॥

सूरज का लख मोहक प्रयाण
हे, प्रिये ! परख निर्वेद - राग,
मुखरित अम्बर - खग - वेद - गान
सुनकर विराग - रस रहा जाग ॥१००॥

कितना मोहक संसार, अहा !
भासित निसर्ग मे विलस रहा !
भावित अम्बर के परदे पर
नाना रूपो में हुलस रहा ॥१०१॥

दिन का प्रयाण अब देख, प्रिये !
प्राणी सब घरमुख हो धाये,
भरकर रजनी के बास-भाव
वापस निज-निज पथ पर आये ।।१०२।।

सरिता-कगार से ललनायें
जल-बीच उतर प्रतिबिम्ब डाल,
लहरित जल को निज रूप दिखा
घर-ओर चली बुन मोह-जाल ।।१०३।।

लहरों की मोहक कल-ध्वनि में—
नूपुर की मादक झनक डाल
प्रमदा-दल वापस घर लौटा
लहरित जीवन को कर विहाल ।।१०४।।

उनके सिर पर आरोहित हो
गागर का जल ही धन्य हुआ
गज-गति की छलकन से रचक
मुख-मंडल सींच अनन्य हुआ ।।१०५।।

वह दूर विचरती मृग-माला
जल पी ऊपर सरिता-कगार
श्वानों की ध्वनि से भग विचलित
अब पहुँच चुकी उस हार-पार ।।१०६।।

लावा झुण्डों मे भर उडान
कावा-विहरित मन क्रान्ति जान,
उड़कर सुदूर अब जा पहुँचे
तरु-राजि-छोर पर शान्ति मान ।।१०७।।

सरिता - कगार - विटपों पर से
बगुले निज नभ - पथ साध चले
कुछ एकाकी पर झार उड़े
वर्त्तुलाकार कुछ लगे भले ॥१०८॥

जल पी गज कर निज ऊपर कर
मद - घोष - पूर्ण चढ़ते कगार
पक्षी समीप फुरकारभरे
उडते सभीत लख आर - पार ॥१०९॥

हे, प्रिये ! देख लोवा - जम्बुक
जल-पान - निरत ही दबक रहे
गज - रव सुन श्वान दूर से ही
कटु भूँक - भरे जब तमक रहे ॥११०॥

हय - टाप अकन घरमुखतावश
रासभ - दल मुदित कुलाँच चुका
वह तट पर धोबी काम रोक
मिल प्रिया-गले अब नाच चुका ॥१११॥

पथ दूर बटोही जो जाते
रवि - अस्त-समय अब कर विचार
रजनी मे रुकना सोच रहे
गति रोक पूछ अपना उबार ॥११२॥

हो सकते जो गन्तव्य लभ्य
उनपर गति कुछ निज बढ़ा रहे
ऐसे राही उत्साह लिये
भावो भर पद - गति चढ़ा रहे ॥११३॥

नभ दूर देश से दल-कपोत
उड़ निज बासों के पास चले।
मँडराने वाले चले निरख
खग रास छोड़ जीवन-रस ले ॥११४॥

पक्षी कर मुँह निज नीड़-ओर
जा रहे गगन-पथ चाहभरे।
हे, देवि! समय घर चलने का
आओ हम भी निज राह धरे ॥११५॥

कुछ दूर पहुँच हो रथारूढ़
सयम-विचार के साथ जुड़े
सन्ध्या-श्री कर ज्यों पान युगल
भावो से भर पथ-ओर मुड़े ॥११६॥

निसर्ग-दर्शन सर्ग

प्रात विहार

रजनी का लख मोहक प्रयाण
तारे नयनों से अश्रु ढार
धूमिल शशि को दे नमन - भाव
छिप चले व्यथा ले गगन - पार ।।१।।

अम्बर की सहज श्यामता अब
ऊषा - दर्शन - हित सजग हुई ।
खोयी निधियों की व्यथा भूल
नूतन निखार में बनी नई ।।२।।

दमयन्ती में उल्लास देख
प्रातः छवि - दर्शन - भाव जान,
राजा नल उपवन - ओर चला
दम्पति - लीला का मोद मान ।।३।।

सम्मुख विकास की कोमलता
निज यौवन में शृंगारमयी,
कलिकाओं में नव राग लिये
मकरन्द भाव में सारमयी ।।४।।

सस्मित आनन की किरणों से—
मधुता सुमनों की खिलती - सी,
चल दृष्टि - पात के भावों से
मधुपों को प्रियता मिलती - सी ।।५।।

रंगीन विभा में खिलती नव
कलिकाओं का आभार मान
दम्पति - यौवन-छवि - लहरों से—
मिलती बयार मधु प्यार जान ॥६॥

बोली दमयन्ती, "नाथ, आज
यह प्रात कला की उजियाली—
मधुमयी नवागत लाली से—
क्या भर देगी रस की प्याली ? ॥७॥

क्या उसी नशे में चूर आज
प्राची से गठबन्धन होगा ?
अच्छा होगा तब मंत्र बोल
मेरा भी शुभ वन्दन होगा" ॥८॥

छा गयी मधुर मुस्कान - विभा
मुख - मंडल के व्यापारों में।
भर गये युगल आलिंगन में
बज उठी रागिनी तारों में ॥९॥

प्राची की सिन्दूरी रेखा
अपने सुराग में रंग ढार,
नल दमयन्ती के भावों में—
करती प्रवेश ज्यों मोद धार ॥१०॥

मुस्कान मधुर कलिकाओं में—
मधुता भर कोमल हास बनी,
भ्रमरों के मादक भावों में
नव प्रेम-मिलन की प्यास बनी ॥११॥

संभाषण की कोमलता ज्यों
अब चचरीक - स्वर गान बनी,
मृदुता भर अंग - भंगिमा अब
तितली की गति में तान बनी ॥१२॥

प्रिय - प्रेम - विकास विलास रूप
अब नयनों का व्यापार बना,
दर्शन में बाहर चित्रित हो
मृदु छवि से मिल साकार बना ॥१३॥

बोली दमयन्ती, "नाथ, विहँस—
ऊषा भोली आयी कैसी !
अपनी मस्ती आनन्दभरी
लेकर मन की मुदिता जैसी ॥१४॥

आनन्दभरी उस लाली में—
वह विभा उमड़ती किस स्वर में ?
अन्तर - रेखायें चल पाती
होकर विभोर जिसके तल में ॥१५॥

अम्बर की बाँहों मे भूली—
किसकी सुधि मे नित आ जाती,
आकर प्रभात में विभा बाँट
सन्तोष कहाँ वापस पाती ? ॥१६॥

प्रिय, प्रेमभरी तव बाँहों में—
मैं भी प्रभात - छवि पाऊँगी
अपने जीवन का वैभव दे
सन्तोष - लाभ उर लाऊँगी ॥१७॥

रंगीन - विभा में हँसती वह
निज नित्य मोद में भाती - सी,
ऊषा प्रसाद भर प्रकट हुई
प्रियतम - हित लिये आरती - सी ॥१८॥

कल पक्षी पंक्ति बाँध सुन्दर
माला की भाँति उड़ चलते,
तरु - राजि - छटा के ऊपर से
अम्बर - छवि - ग्रीवा मे लसते ॥१९॥

प्यारी छाया को उर समेट
तरुवर सोये जो जगत भूल,
कलरव कर पक्षी जगा रहे
समझा लज्जा के पाठ मूल ॥२०।

धीरे - धीरे तरु सजग हुए
छाया - मुग्धा में भाव डाल,
मादक गति में जो जाग रही
फँस निशा - मिलन के मोह जाल ॥२१॥

कुहरे की चादर बगल डाल
मादक हरियाली झलक रही,
खिलती कलियो के नयनो की—
रसभरी खोलती पलक रही ॥२२॥

प्रिय भावो के उद्गारों मे—
शृंगार - कला बल खाती - सी,
ऊषा की झाँकी में आकर
नयनों मे नही समाती - सी ॥२३॥

श्यामा सम्मुख मंजरियों की—
माया में छिपकर बोल रही,
प्रातः की विकसित लीला लख
कानों में मधुरस घोल रही ।।२४।।

प्रिय झीनी चादर ऊपर कर
कलियाँ लसती अँगड़ाई में ।
भ्रमरों को आकर्षित करती
मधुभरी नवल सुघराई मे ।२५।।

नव विकसित नीरज-नयनों से
ऊषा-दर्शन के राग लिये,
कोमल लहरें अन्तर-गति से
अब जगती भर अनुराग नये ।।२६।।

प्रियतम, यह भ्रम होता होगा
वह ऊषा में लाली क्या है ।
भरती पराग कलिकाओं में—
वह यौवन-मतवाली क्या है ।।२७।।

जादू भर देती नयनों में—
अन्तर-गति मोहित कर देती,
निज मौन मृदुल मुस्कान दिखा
भावों से विथकित-सी करती । २८।।

ज्यों निशि ने शशि-अनुराग-प्रसव—
से ऊषा को नव जन्म दिया,
प्राची निज पावन गोदी में—
लेकर अनुपम श्रृंगार किया ।।२९।।

या योग-स्वरूप कला से भर
जग-अन्धकार कटु त्याग चला,
आनन्द-विभा की लाली से
पा प्रथम जागरण ज्ञान-कला ॥३०॥

या जपा कुसुम के नव वन का
लखकर सुहास भावों से भर,
नभ चित्र खीचता सस्मित मुख
प्राची के पावन फलक सुघर ॥३१॥

या विश्व-सुन्दरी की मादक—
मुस्कान खिली उस लाली में
श्यामल अम्बर वैभव में भर
भूला उस छवि मतवाली मे ॥३२॥

या हेम-विभा के परदे में—
परियों का कोई लोक छिपा,
जगमग-सी झलक फलित पट पर
नव राग-रग मादक रति पा ॥३३॥

या मधुशाला का द्वार सजा
मधुरजन की शोभा से भर,
परदे में विलसित मधुबाला
कोमल कर में प्याला लेकर ॥३४॥

मुझको लगता, आनन्द-विभा
सबके अन्तर-भावों वाली,
छवि-सार सजीवन ले आयी
चाहे जो पी ले भर प्याली ॥३५॥

प्रिय, अपनी कटुता का ऐनक
सम्मुख जो सहज उतार सके,
ऊषा की मधुर छटा से वह
पाकर मुदिता मुस्कान छके ।।३६।।

सज प्रकृति विलसती भर विलास
अन्तर के तार बजाती-सी,
नाना भावों में खिली हुई
मादक खग-स्वर में गाती-सी ।।३७।।

रजनी भर सोये चंचरीक
पाकर प्रातः का ज्योति-भान
पंकज सुहास से हिल-मिल कर
किसका करते अब प्रेम-गान ।।३८।।

रसमयी कला में डूबा वह
उसका मृदु मादक स्वर क्या है ?
जिसमें खोने का भाव मिला
वह जीवन-राह उधर क्या है ? ।।३९।।

रंगों की विरचित माया से—
पाकर मधुरूपित कौन कला—
कोमल प्रकाश पर तिरती है
धर साज तितलिका वह अबला ।।४०।।

किस परम अलक्षित का रहस्य
शृंगार-कला में नाच रहा ?
वह स्वयं विनर्त्तित लीला में—
आनन्द, रूप, रस जाँच रहा ।।४१।।

कोमल निसर्ग के अधरों-सी
ऊषा मुस्कान सफल करती,
क्षण वर्त्तमान की रसता में—
तज भूत-भविष्य उतर पड़ती ॥४२॥

वह मिट जाने का भाव धन्य
जो वर्त्तमान पथ चलता हो,
मधुभाव न क्षण भर तजकर जो
आनन्द-रूप में मिलता हो ॥४३॥

जिसकी मुस्कान निरख कर जन
भावों की झोली भर लेता,
अपनी सुधि के उद्गारों से—
निज-निज मन भर लेता-देता ॥४४॥

पर लेना-देना तजकर जो
रस-सिन्धु-धार में आ पाता
आनन्द परम उसका होता
भूले अपने को पा जाता ॥४५॥

ऊषा का लेना-देना क्या
आनन्द-मग्न होना उसका।
मन की माया तज ऊपर हो
मस्ती में भर हँसना जिसका ॥४६॥

उड़ने की गति में मस्त नभग
पंखों से किसकी छटा साध
प्रियतम, देखें कैसे लगते
अपने स्वभाव में हो अबाध ॥४७॥

वे चले जा रहे किस छवि के—
भावों से पूरित छोर जान,
रागारुण श्यामल अम्बर में—
आशा के ऊपर मोद मान ॥४८॥

वह कौन विहारी पंखों से—
जीवन - छवि सरस बटोर रहा
अम्बर प्रभात के भावों को—
जगती पर मुदित बिखेर रहा ॥४९॥

जिस छवि से होकर हंस - पाँति
मानस के पार पहुँच जाती,
कृति - कला राह में वितरित कर—
निज सहज सरोवर में भाती ॥५०॥

खिलती पंकज की कलियों से—
क्या हंस - विभा कुछ कह देगी ?
उस कहा - सुनी के संगम पर—
मन की मुदिता कैसी होगी ? ॥५१॥

प्रिय, जिस रहस्य के दर्शन - हित
ऊषा धीरे से झाँक रही,
उस परम छटा में चलने को—
प्यारी सुधि भोली ताक रही ॥५२॥

किस क्षण में जग की व्यथा भूल
जीवन का सर अपना होगा,
पुष्पित अन्दर की जगमग में—
मधुमय अलिगुंजन भर देगा ? ॥५३॥

जिसकी बहती छविधारा में—
लहरित जीवन - छवि - रूप मिला,
उस परम रूप की चितवन से—
मुस्काता भोला प्रात खिला ॥५४॥

हे, प्रिय ! वह जीवन अपना है
चलने पर राग - द्वेष तजकर,
श्रृंगार, परम आनन्द - साज
मिलता स्वभावगत जो जीभर । ५५॥

सुमनों की सस्मित लीला में—
उपवन - श्री सस्मित देख चले,
छविमानों मे छविमान एक
उसकी जी भर कर झाँकी लें ॥५६॥

प्रिय, प्रेममयी उस दशा - बीच
रेखा फिर कहाँ वासना की ?
आनन्द - मग्नता मे अपनी
लेने को कुछ न कही वाकी ॥५७॥

निशि-दिवस यवनिका की गति पर
लीला रस - कलामयी चलती
सन्ध्या - प्रभात विष्कंभ समझ
नाना रूपों में बन रहती ॥५८॥

सोयी जग की कल चित्रपटी
जो निशि की भरी कालिमा में—
नाना रंगों की शोभा ले—
खिल उठी सुप्रात - लालिमा में ॥५९॥

रजनी गुण से, नित खीच रही
जगती का थकित पुरानापन।
प्रातः करता फिर से वितरित
जग - रूप - भाव में नव जीवन ॥६०॥

आशा की किस मधु डोरी से—
खग खिंचे जा रहे प्रेमभरे,
पीताभ श्यामता में तिरते
प्राची समीप नव राग धरे ॥६१॥

निशि सपनों को साकार देख
वह गगन परेवा प्रिया - साथ,
प्रिय, देखें वह जा रहा पूर्व
प्रातश्छवि की सुनने सुगाथ ॥६२॥

दुख - सुख में हाथ बटाने को—
जा रही परेई संग लगी,
अम्बर सुरंग श्यामल श्री में—
प्रेमाभ छटा के भाव पगी ॥६३॥

आनन्द मनाना ही जीवन,
इसकी रसता खग समझ रहे,
उत्साह मोद से भरे हुए
नभ में न कहीं पर उलझ रहे ॥६४॥

सत्कार खगी का देखें, प्रिय !
कुसुमित श्री - सज्जित डाली पर,
रूपों से होड़ मिलाने को—
निज प्रिय चुम्बनवश मधु से भर ॥६५॥

जिस चुम्बन की रसता है, प्रिय !
आलिंगन के पथ उमड़ रही,
प्रिय - पंख - पाश में पड़ी खगी
भावों भर रति में जकड़ रही" ॥६६॥

भर गये युगल आलिंगन में—
नल - दमयन्ती रस भाव छके
क्षण भूल समय की गति मोहक
विस्मृति का सुख पहचान सके ॥६७॥

फिर दिव्य भाव से दमयन्ती
लख दिव्य छटा की रस - झाँकी
रंजित रस में रवि - बिम्ब देख
कुछ समझ सकी अपने जी की ॥६८॥

आशाओं का सत्कार देख—
खग - गानभरे भावुक उर से
विह्वल सुमनो के भावों में—
फिर बोल उठी कोयल स्वर से ॥६९॥

जीवन - रस - पथ कुछ समझ सकी
वर्त्तित छवि के व्यापारों से।
भोली दमयन्ती फिर बोली
भावुकता भरे विचारों से ॥७०॥

"प्रिय, नवल प्रभाती लीला में—
जीवन के सुमन खिला लें हम .
क्या ही सुन्दर होता, मोहन !
जीवन - मधु - धार मिला लें हम ॥७१॥

भूली जो जीवन की कलियाँ
अब तक अभाववश खिल न सकीं,
मकरन्द - भाव से भर उनको
यौवन - रसता पा ले उनकी ॥७२॥

देखें, कोयल की माती ध्वनि
कलिकाओं से क्या कहती है!
मधुमय विकास की धारा में—
स्वर - लहरी सहज उमड़ती है ॥७३॥

पाकर विकास जो सुमन बनीं
स्वर - धारा में लहरा लेती,
कलियाँ मुस्कान प्रदर्शन - हित
घूँघट के दल बिखरा देती ॥७४॥

मोहक विकास - छवि - रूपों में—
खिलने की जैसे होड़ लगी
अलिगुंजन की वह नव्य कला
कंपित लतिका के साथ जगी ॥७५॥

पक्षी क्या हैं नादान सभी
जीवन का रस भर लेने में?
है बरस रहा जो सहज स्वयं
बस भूल उसे खो देने मे ॥७६॥

खिलकर निदान मिट जाने की—
चिन्ता जीवन में कौन करे
जीवन - हित जो रस बरस रहा
उसको सप्रेम बस मौन भरे ॥७७॥

पाकर विकास मिट जाने में—
प्रिय, शान्ति - भाव का रस बसता,
आनन्द अमर सबमें कोई
लख ले जो, मधु उसका बनता ॥७८॥

सबका परिणाम सरसता का
अन्तर - स्वभाव से जान सके,
वह धन्य महामानव जग में—
जो मधु - धारा पहचान सके ॥७९॥

दुख सुख दोनों के खेल बीच
रस के स्वभाव में झाँक रही,
मधुता वह प्यारे जीवन की—
प्याली की क्षमता आँक रही ॥८०॥

प्रिय, भूत भविष्य भूलकर हम
क्षण वर्त्तमान खाली भर लें,
नयनो के मदिर झरोखे से—
मधुशाला की प्याली भर लें ॥८१॥

मतवाली अपनी माया मे—
प्रियता स्वभाव भर नाच सके,
उस चकाचौध में क्षण भर हम
मधुमयी एकता जाँच सकें ॥८२॥

प्रातः की छवि मधुशाला में—
वह द्वार खोलती रंजन का,
जिसकी जैसी अन्तर - गति हो
पा ले आसन अपने मन का ॥८३॥

प्रिय, देख सकें तो देखें छवि
प्रात. की इस उजियाली में
कैसी वह लगती भावमयी
अपनी रचना मतवाली में ।।८४।।

सरिता सर स्वर्णिम रंग-विभा
पाकर शोभा में विलस रहे,
उर्मिल आलिगन के स्वर में
प्रिय, प्रातकला भर विहँस रहे ।।८५।।

अम्बर से कलित नव्यता का
शृंगार सहज ज्यों उतर चला,
आनन्द मधुर मुस्कान-सहित
वितरित करता-सा प्रेम-कला ।।८६।।

प्रिय, रस-रंजित मुस्कान-साज
अन्तर-पट पर अंकित कर लें,
जब चाहें उसको अन्दर लख
मुदिता से निज झोली भर ले ।।८७।।

पावन खग-वन्दन शिखरो पर
चलता पिंगल-कर-भावों में।
उड़ती तरु से वह बगुल-पंक्ति
स्वर्णिम माला की श्री जिसमें ।।८८।।

वह पावन वन्दन किसका है
विहगों के कोमल कल स्वर में,
जिसको नूतन छवि सुन पाती
सस्मित शोभित शुचि अम्बर में ? ।।८९।।

नयनों के पथ से जो होकर
अन्तर में भर अनुराग रहीं,
छवि सुमनों में वह किसकी है
जो प्रात विभा में जाग रही ॥९०॥

जो स्वयं बना यौवन - स्वरूप
मुस्कान - किरण में खिलता - सा
जीवन की झाँकी देने को
उर प्रेम - रूप में मिलता - सा ॥९१॥

तारक नयनो से किसे निरख
बतला दें, वे किस देश चले,
शशि से लेकर मुस्कान - कला
जो हँसते निशि मे सहज भले ? ॥९२॥

निशि - माया की मोहक रचना
रवि - ज्ञान-कला में क्यों छिपती ?
क्या प्रात - अक में और रही
जीवन की मृदु शोभा दिपती ? ॥९३॥

मधु - हित चलती जग-लीला मे—
पट पर नाना छवि जो धरता,
वह तो जीवन का जीवन प्रिय
मधु-निधि रस-भाव सफल करता ॥९४॥

निशि अन्धकार को आशा दे—
प्रात: मे धरती अलग राह
कुछ नूतन राग बजाने को
मिलती सन्ध्या - तट लिये चाह ॥९५॥

नूतनता की पा दिव्य राह
रसता रूपित हो चलती-सी
पाकर निसर्ग की प्रात-छटा
संकेत कहीं कुछ करती-सी ॥९६॥

सन्ध्या प्रातः को बुला रही
मृदु भावभरे कोमल स्वर में,
नित किरण-लास मे भर विकास
निज रस बिखेरती-सी हर में ॥९७॥

प्रातः पुकारता सन्ध्या को—
आशा के प्रेमभरे पथ से,
शृंगार-कहानी दीपक की—
नित समझ रहा ऊषा-स्वर से ॥९८॥

प्रातः की गोदी में सन्ध्या—
नित लाली लेकर मिलती ज्यों
मुख की लाली रख देने को
शृंगार-राग में खिलती ज्यों ॥९९॥

सन्ध्या भी प्रातः को लेकर
निशि प्रेम-लोक में छिपती-सी
फिर मिलन-कला से विकसित हो
ऊषा बन सस्मित खिलती-सी ॥१०० ।

यह प्रेम-कहानी जीवन की—
प्रियतम, सचमुच जो जान सका,
आनन्द-सिन्धु में लहरित-सा
पूरा जग-जीवन मान सका ॥१०१॥

अम्बर श्यामल आनन्दभरा
सन्ध्या - प्रभात की लीला भर,
खग - गान - भरित सुमनित विकास
प्रिय, कटुता इसमें कहाँ किधर ? ॥१०२॥

बीते जीवन को भूल सहज
नव जीवन में खग विचर रहे,
पीताभ कला पर तिरते कुछ
पुष्पित तरु पर कुछ, प्रियवर, हे! ॥१०३॥

सचमुच उनका जो वेद - गान
प्रातः की छवि में चल पाता,
रसता की राह पकड़ कोमल
सन्ध्या के स्वर मे मिल जाता ॥१०४॥

कोयल मादकता में पागल
बस "कहूँ कहूँ" कह रह जाती।
उतनी ही ध्वनि पंचम स्वर में—
कोमल कठो से कह पाती ॥१०५॥

"पी कहाँ" पपीहा पावस में—
उस मोहन को रटता स्वर से
चपला - स्मिति में जो, कभी - कभी
झाँकी देता घन - अम्बर से ॥१०६॥

चपला की चमकीली डोरी
बँधती - सी ज्यों प्रेमिल तन मे,
नर्त्तनरत सहज शिखी होते
लख उसकी ही मधुता घन में ॥१०७॥

पावस प्रभात की शोभा में—
घन - इन्द्रधनुप की छवि उसकी।
छविधर जीवन की झड़ियों से—
वर्षा कर देता छवि - रस की। १०८॥

सुरधनुषी रंगों में क्रीड़ित—
रंजित कर चंगुल, चञ्चु, भाल,
शुक विलस रहे रस - भावभरे
पहने कंठों में कलित माल॥१०९॥

मधुमास - बीच वह रसमय हो
नाना रूपों मे घूम रहा
खग - मृग तरु, सुमनित लता - बीच
मधुभाव - भरित वह झूम रहा॥११०॥

हे, प्रिय! आलिंगन के स्वर मे—
तितली क्या उसको समझाती?
मधुरंजित नव परिधान पहन
चुम्बनगत रस से भर जाती॥१११॥

मधु - धारा का गुण - गान सहज
'गुन - गुन' कर मधुप न कह पाता,
मधुपान - फलित मादकता से—
दलगत रजनी में खो जाता॥११२॥

प्रिय धन्य वही जो डूब तिरे,
मधुता की निज गहराई में
बाहर की झाँकी दीपित हो,
अपने मन की सुघराई में॥११३॥

भर वह श्रृंगार प्रभाती में—
उत्तर देता धर दिव्य कला
प्रिय, देख सकें तो देखें अब,
उसके आश्रय मे छवि अबला ॥११४॥

छवि सदा सहारा ले बसती
रूपो की चलती माया से
वह रूपवान तो एक सदा
बनता अनेक निज काया से ॥११५॥

मोहक प्रकृति के भाव में, वह नित विलसता एक ही,
प्रातश्छटा के अंक में, बेसुध विचरता है वही,
निशि - साज - वलित मयंक बन, तारक - सभा में निखरता
मादक बदल निज ताल नट, नर्त्तित विभा से विलसता ॥११६।

प्रियता नवल नित दे रही, पावन प्रभाती लालिमा।
सौन्दर्य का भर साज शुचि, भूली कटुक उर - कलिमा ॥
निशि के गिरे आँसू सहज, मुस्कान में अब खिल गये
फिर दीप-लीला लख विगत, प्रिय रवि-कला में मिल गये ॥११७॥

रस-राग की लीला वही, निज रास में नित रच रहा,
संगीत भर नव भाव मे, नित रूप रचता नट महा।
मधुरूप यौवन मे दिया, अपने बदलते ताल से।
फिर बदल कर स्वर और ही, मिलता जरा-गति-भाव से। ११८॥

तरुवर-शिखा पर गानकर, खगरूप में लसता वही,
पत्रक सभा में ताल भर, बन कर सुमन हँसता वही।
चुम्बन-कला का वह मधुप, मधुभावना उसमे बसी
रंजन उसी से पा तितलियाँ, थिरकती बन रूपसी ॥११९॥

भर नाद पंचम कोकिला, गाती उसी के ताल पर
हर भाव मे रूपित वही, भरता विलक्षण नवल स्वर।
यौवन-विभा मे छिप वही, भरता नवल रस - वासना
फिर दर्शको मे भाव भर, भरता मधुर रस - कामना ॥१२०॥

लतिका लिपट प्रिय विटप से, सुनती कथा बस प्रेम की
खगगानमय मृदु प्रश्न पर, पाकर कला मधु मौन की।
पल्लव - सभा मे नभग नित, जिसकी कहानी पूछते
प्रतिरूप - वासी सहज प्रियतम, की कला नित बूझते ॥१२१॥

छवि - फलित रचना मे स्वय, धर रूप नर्त्तन कर रहा
वह ज्ञान - सत् - आनन्द के, सँग प्रेममय भी बन रहा।
अम्बर दिशा के छोर पर, सस्मित कला नित लख रहा
मादक दशाओं मे वही, संभार कलित परख रहा ॥१२२॥

इतिहास देकर बदलता, वह तो स्वय जग-खेल मे।
सन्ध्या - प्रभाती में स्वय, हँसता विरमता मेल मे।
संयोग मे सस्मित वही, विरही सुप्रेम - वियोग मे।
शृंगार में खिलता वही, नित प्रेम के रस - योग मे ॥१२३॥

रस की फलित जीवन-छटा, लेकर प्रकृति नित विहसती
रस - हेतु सान्ध्य प्रयाण में, निर्वेद के सँग विरमती
अनुराग उसका रूप धर, घन की घटा मे बरसता
स्नेही सहज चातक बना, उर - भाव - हित नित तरसता ॥१२४॥

रस-हेतु रजनी में छिटी, हे प्रिय! उसी की कालिमा
ऊषा सुरजित रूप मे, पाती उसी की लालिमा।
सन्ध्या सभाव गुलाल भर, छविरंग उसका धारती
शुचि रूप मे प्रिय भाव भर, करती उसी की आरती ॥१२५॥

प्रिय, देख नही लेते नभ में—
खग किसको रहे पुकार मुदित,
प्रातः की पावन वेला में—
लखकर रवि-रंजित भाव उदित ॥१२६॥

उस भावभरे शुचि वन्दन में—
किरणों की कला विलस पाती,
प्रेमिल विचार मे नर्त्तन कर
जीवन के स्वर मे मुस्कयाती ॥१२७॥

चढ़ती किरणों के रजन में—
घन दे फुहार शोभा भरता,
शीतल फुलझड़ियो - सम होकर
नव इन्द्रधनुष की श्री रचता ॥१२८॥

सुरधनु - कगार की राह पकड़
उसकी ही चपला आ जाती,
परियो की प्रभा बिखेर समुद
कवि के कोमल स्वर मे गाती ॥१२९॥

उस प्रभु की आभा जीवन में—
शृंगार बनी तरसाती - सी।
भावो के शीतल अम्बर से—
नित प्रेम - सुधा बरसाती - सी ॥१३०॥

आक्रोड़ वही जिसमे ऊषा—
श्रृंगार सजाकर चली गयी,
प्रातः की छवि में चितवन की—
मृदु कला दिखाकर नयी - नयी ॥१३१॥

जिसकी शोभा ले प्रात की—
कोमल किरणे अब नाच रही,
उसके ही जीवन से जीवन—
की सरस कहानी बाँच रही ॥१३२॥

प्रात: की छवि ज्यो कहती है
द्रुम लता सुमन मे हास लिये,
‘खग - चंचरीक - गीतों में मम—
प्रिय छिपा प्रेम की प्यास लिये” ॥१३३॥

उसकी ही सरस कहानी सर
सरसिज के स्वर मे बाँच रहा,
पाकर विकसित मुस्कान मधुर
कोमल लहरों में नाच रहा ॥१३४॥

हे, प्रिय ! निसर्ग की आँखों मे—
उसकी छवि का मोहक पानी।
उन तारों में क्षण झाँकें हम
जिसमे होते कविवर, ध्यानी ॥१३५॥

देखे, प्रभात की नव शोभा
निज शोभाधर को निरख रही।
ऊषा जिसको पा चली गयी
प्राची उसको अव परख रही ॥१३६॥

रजनी से निकल प्रभाती नित
नूतन जीवन - रस वगराती
अम्वर के सुकलित परदे पर
रस की लीला फिर दिखलाती ॥१३७॥

कृन्तियो से क्लाति देख रजनी
आकर थकान सुलझा लेती।
फिर विहँस प्रभाती नव रस दे
प्रिय रूप - कला दिखला देती ॥१३८॥

सुख - दुख की चित्रित लीला में—
आनन्दभरा आधार वही।
रस की आँखों से देखे तो
सबमे अन्तर का प्यार वही ॥१३९॥

नाना रूपो की लीला में—
जीवन का पढ़ता पाठ वही।
प्रिय दर्शक बनकर देख चलें
उसमें तो कटु रस कही नही ॥१४०॥

अपने अन्दर की कटुता ही
बाहर आरोपित हो जाती,
मन के विरचित इच्छा - पथ से
जीवन मे घूम उतर आती ।१४१॥

मन का बन्धन सुलझाकर, प्रिय !
पा लें हम पावन प्रेम-द्वार ॥
सर्वत्र एक की झाँकी में—
निज जीवन का कर ले उद्धार" ॥१४२॥

छवि-भाव प्रिया मे परख भूप—
प्रियतावश स्वयं निहाल हुआ,
अतिचेतन मन की दशा देख
मन उसका भी मतवाल हुआ ॥१४३॥

फिर संभल प्रिया का रुख विचार
 रथ पर उसको आसीन किया,
तब बैठ पास घरमुख रथ कर
 प्रियता को भाव नवीन दिया ॥१४४॥

भ्रमण-दिवस सर्ग

दिन एक शान्ति के भावों में—
प्रातः जगमग उपकरणो से—
सूरज चित्रण मे निरत हुआ
रचना - विन्लसित निज किरणो मे ।।१।।

मोहक मौसम का भाव जान
दमयन्ती के मन चाव हुआ,
'हम आज मनाये भ्रमण - दिवस,
नृप मे ऐसा प्रस्ताव हुआ ।।२।।

सुनकर प्रस्ताव सरल मन का
नृप ने प्रमुदित मन मान लिया
निज राज्य - भूमि के भ्रमण - भाव—
पर उसका अति सम्मान किया । ३।।

अनुचर रक्षक भी सजग हुए
उत्सव की आज सफलता में।
लग गये सभी भावो से भर—
अपनी - अपनी तत्परता में ।।४।

मंत्री परिचायक कला - कुशल
पथ पर परिचय का समय जान—
नृप के समीप ही हो बैठा
अवसर पाकर मन मोद मान ।।५।।

आगे - आगे रथ चला सुघर
पीछे - पीछे सज्जित समाज।
छवि - भाव रूप दमयन्ती नल
दोनों रथ - गति में रहे राज ॥६॥

राजा - रानी का भ्रमण साथ
उस नगरी के कौतूहल में
क्षण - क्षण नयनों का विषय बना
प्रमुदित मन नर - नारी दल में ॥७॥

सुन्दरियाँ लगीं झरोखों से—
दम्पति - छवि - दर्शन - चाह लिये।
चपला समान झर - झमक लिये
उत्सुक छविरूप सिँगार किये ॥८॥

वैभव से विलसित नगर - बीच—
चलती श्री निज तरुणाई में।
छवि निरख - परख अंकित करते
जन मानस की गहराई में ॥९॥

भरकर प्रसाद प्रासाद कलित
शुभ जीवन के आवास बने।
शुचि प्रेम - फलित उर - शान्ति - सहित
सब देख रहे सुख के सपने ॥१०॥

वैभव - निवास उस नगर - बीच—
मन में प्रसन्नता भर देता।
सुख - भावों का रूपित विचरण—
दर्शक दल के मन हर लेता ॥११॥

जगमग वैभव की वह घन - श्री
जीवन वन अन्तर तर करती,
भावों के सरसिज विकसित कर
मन भृंगों मे मधु - स्वर भरती ॥१२॥

जन - जन में व्यापक धर्म - भाव
मन का संघर्ष मिटा देता।
निज - निज पथ के आचरण - बीच
जीवन का संबल मिल जाता ॥१३॥

सब भाँति कला सुख - दर्शन मे—
रखता न कही अपना सानी।
बरबस मन आकर्षित करता,
ऐसा था चढा हुआ पानी ॥१४॥

सचमुच ही स्वर्ग उतर कर ज्यो
धरती पर आकर चरण दिया।
उसमें भी सुखमय भाव परख
आ निषध देश का वरण किया ॥१५॥

मंत्री ने कला - रूपता को—
साकार सामने दिखलाया।
वैभव - विलास की रसता का—
शृंगार भाव भर समझाया ॥१६॥

अवसर का व्यापक शान्ति - भाव
सुखमय जीवन से खेल रहा।
विलसित प्रसाद ज्यो मूर्त्तिमान
अन्तर से करता मेल रहा ॥१७॥

राजा - रानी को तोष हुआ
निज राज - नगर के वैभव पर।
धीरे - धीरे रथ बढ़ा और
सब हुए मुदित भावों से भर ॥१८॥

फिर हुए नगर के बाहर सब
रथ मुड़ा जिधर सरिता - कगार।
जलता था सदा मसान जहाँ,
शव-दाह-क्रिया — दुख-दृश्य धार ॥१९॥

मन्त्री से पा संकेत सहज
रथ रुका और सब शान्त हुए,
जीवन की निर्मम गति लखकर
आश्चर्य - चकित दुख-भ्रान्त हुए ॥२०॥

देखा वह दृश्य भयावह था
‘धू - धू’ कर उठता धूम रहा,
निर्मम तन - लीला - हरण - हेतु
ज्यों काल रूप धर घूम रहा ॥२१॥

विकराल ज्वाल जल रूप धार
डट डपट - भरी ‘हर - हर’ करती,
चुप चित्त पड़े शव पर चढ़कर
तन मर्दन कर अम्बर धरती ॥२२॥

हिम्मत हरती करती निराश
नट नाश - क्रिया मे रत रहती,
चटपट चढ़ पटक पछाड़ मृतक
‘हू - हू’ कर सबमें भय भरती ॥२३॥

गर्दन गह गलित गठन 'घू - घू'—
करती, तन-रूप गटक जाती,
लड़ती - सी चढ़ती लौ लुँडेर
रूपित हो तन विरूप करती । २४।।

कुछ नाम-निशानी बच न सके
वह तमक - तमक तन हेर रही,
विकराल गाल - लाली लहास
आशा पर पानी फेर रही ।।२५।।

'चट-पट, धस-भस, 'धू - धू' करती
साक्षात् प्रेतिनी के स्वर में,
चिढ़ कड़क कराली - सी लगती
लग लपट घूम नर्त्तित वन में ।।२६।।

बिखरे तन अंग गलित विज्वलित
अति अस्त - व्यस्त - से पस्त आज,
हो नग्न भग्न भय - घृणा - रूप
पट - हीन जल रहे विगत -लाज ।।२७।।

वह चिता चित्त पड़ धसक - भसक
सुनकर कटु कड़क कराली की,
भयभीत दबी पद - तल कम्पित
जिह्वा निहारती काली की ।।२८।।

श्रोणित - सिंचित जिह्वा कराल
निर्भय निज काल - गाल भरती,
निर्मम विनाशकारी नर्त्तन –
लखकर 'हर-हर, बम-बम' करती ।।२९।।

'सिक-सिक' कर चरबी सिसक रही
जल काँप टूटता अस्थि - जाल।
लोढ़िया मल मांस और मज्जा
सब घृणा-घटित बदतर, विहाल ! ॥३०॥

जलती आँखे रुधिराश्रु ढार
जीवन की दशा निरख रोती।
क्षण - भंगुर जग - शृंगार - साज !
अपना न कहीं हीरा - मोती ! ॥३१॥

पाकर कटु कदन कपाल - क्रिया
वह टूट खोपड़ी हाय - भरी—
खाकर सपूत से वश - चोट
समझी ममता की भूल निरी ॥३२॥

भ्रम - भूलभरे जग - जीवन में—
कोई न सहज साथी अपना।
मदिरा पी मोह - वासना की—
सोकर सब देख रहे सपना ॥३३॥

दमयन्ती भय - भ्रम - घृणाभरी
वह देख दृश्य कटु काँप उठी,
गत भोग - दृश्य क्षण सोच भभर
भय की वह कटुता नाप उठी ॥३४॥

वैसी ही छाया नृप - उर में—
छा गयी सोच वैभव विलास,
परिणाम परख नश्वरता का,
क्षणभंगुर जीवन से निराश ! ॥३५॥

मन्त्री ने समझाया, 'राजन !
जीवन का यह परिणाम - भाव,
अपने वैभव मे भोग और
फिर पलट रूप धरता कुदाँव ! ॥३६॥

हर नगर - विलास समय पाकर
धीरे - धीरे धरता मसान।
परिणाम यही सबका होता
तन-यौवन-सुख—क्षण-भ्रान्ति-भान ! ॥३७॥

महलो का पला हुआ यौवन
परिवर्त्तित हो धरता मसान।
जीवन का हास - विनोद स्वयं
दुख-रूप पकड गिरता उतान ॥३८॥

भ्रम - भोग समय पर पलट रूप
धर-पकड़ यहाँ तक ले आते।
क्षणभंगुर तन - मादकता मे—
जन भूल न वहाँ समझ पाते ॥३९॥

मांसल मादकता की शोभा—
नीरस रह जाती अस्थि - जाल।
आकर फिर यही मसान - घाट
असहाय पहुँचती अग्नि - गाल ॥४०॥

मुस्कानभरी चल चितवन तज,
मुख - मंडल श्री - विहीन होकर,
पड़ चिता चित्त अम्बर लखते
जल-जल हा ! अपनी छवि खोकर ॥४१॥

अपने वैभव में भूला - सा
स्वर्गिक सुख नगर - बीच पलता,
वह जरा - जीर्णता पर सवार—
होकर मसान - गति से मिलता ॥४२॥

जीवन रंजित सुख सपनों से—
महलों के बीच झलक भरता।
मोहक वह चल अदृष्ट के पथ
विचलित मसान पर आ गलता ॥४३॥

सेवा का सुन्दर साज सहज
जिसका मोहक आधार बना,
वह काया आकर जल जाती
क्षणभंगुर भूल सुखद सपना ॥४४॥

जो दृश्यमान तन - मदन - गठन,
सब झलकभरे मांसल विकार।
जिनपर मन न्यौछावर होता
हा ! अन्त काल के सब शिकार ! ॥४५॥

लौ की लीला तज प्रेम - पाश
लौ की ज्वाला में मिल जाती,
असहाय विलखती - सी असमय
जल जाती धक - धक कर छाती ॥४६॥

हे, नरवर ! काल-मसान - भाव—
हल करने को कटु प्रश्न बना,
जो भी जीवन में हल कर दे
उसका ही तो सब कुछ अपना ॥४७॥

जीवन की कठिन पहेली यह
गुरु - ज्ञान - कृपा से बूझ सके,
पाये वह भाव अमरता का
फिर काल बसे वश में उसके ॥४८।

अन्तर - भावों में प्रश्न-चिन्ह—
राजा - रानी के जाग उठा।
भोगानुराग - आवृत मन में—
उत्तर - हित सजग विराग उठा ॥४६॥

दमयन्ती की सम्मति लेकर
विचलित मन त्याग मसान घोर—
राजा ने फिर सकेत किया
रथ मुड़ा और फिर अन्य ओर ॥५०॥

फिर स्वस्थ भाव से आगे चल
कुछ दृश्य और ही देख सके,
भोले पशु - पक्षी विचर रहे
साथी जैसे जीवन - रस के ॥५१॥

हरियाली अपने भावों मे—
जीवन की व्यथा भुला देती।
सुमनों की रंग - विरंगी छवि
अन्तर का राग मिला लेती ॥५२॥

संगीत गान दैवी लेकर
मन-मुदित विहग तरु - डाली पर—
राजा के स्वागत - गान - हेतु
गा रहे भाव प्रिय खाली भर ॥५३॥

स्वागत में पर फुरकार शुकी
शुक - साथ काटती थी कावा।
सन्देश - हेतु दल मे उडान—
घुस - पैठ - सहित भरते लावा ।।५४।।

सुमनो से भरी लतायें भी—
पथ पर निज भाव दिखा देतीं,
भावो - भर सस्मित प्रेम - सहित
रह - रह अन्चल फहरा लेतीं ।।५५।।

बुलबुल की लुका - छिपी देखी
निश्चित परेवा का विहार,
प्यारी - सँग भूत - भविष्य भूल
मदमत्त शिखी का मधुर प्यार ।।५६।।

अम्बर अनन्त की रचना मे—
बहुरंगी जग - शृंगार पला।
किस प्रेम - लोक के मिलन - हेतु
जग - जीव सीखते प्यार - कला ? । ५७।।

शृंगार सुपथ धर सज - धज कर
प्रिय लोक दिव्य तक ले जाता,
पर चल जन बीच भूल जाता
बन भोग - वासना का कर्त्ता ।।५८।।

वह द्वार न पाता भूला - सा
विस्तार न क्षण का कर पाता,
भ्रमवश निज क्षणिक समर्पण पर
अन्तर - सुख बाहर जा धरता ।।५९।।

रस का जो परम स्रोत भीतर
उसकी नित धार अमरता की।
उस अपने को नर भूल गया
इच्छा से भर नश्वरता की ।।६०।।

भीतर जिसको रस - धार मिली
वाहर भी मिलती मधुर छटा।
जीवन वसन्त से भर जाता
उमडी रहती मधुमयी घटा ।।६१।।

यों भावों की गति में रथ - गति
निज शालीनता दिखाती थी।
उत्साह - वीरता भरी हुई
छविमयी कला मे भाती थी ।।६२।।

तव तक आगे वह दृश्य मिला
थी भीड लगी, चौकी क्षण भर।
राजा का शुभ आगमन जान
जन नमन - सहित आशा-विह्वल ।।६३।।

वह कला - प्रदर्शन जादू का,
अति भावपूर्ण जन - मेल रहा।
रथ रुका, समाज - सहित उत्सुक
आश्चर्यपूर्ण चल खेल रहा ।।६४।।

सिर पर हाथी का भार लिये
निर्भयता से नट नाच रहा।
जैसे कन्दुक - क्रीड़ा से भर
प्रमुदित - मन सहज कुलाँच रहा ।।६५।।

क्षण में देखा, गज के ऊपर
भहरा कर गिरते विटप रहे।
हाथी की सुन चिग्घाड़ भयद
जन भभर चकित भय-भाव लहे ॥६६॥

क्षण बाद न देखा हाथी वह
सब विटप जहाँ के तहाँ खड़े।
दर्शक जन विस्मित भावभरे
कौतूहलवश फिर स्वस्थ अड़े ॥६७॥

तब फिर नट पट खीचा बढ़कर
सम्मुख यक सिह दहाड़ रहा,
माया-मृग पंजे से दबोच
धरती पर पटक पछाड़ रहा ॥६८॥

दर्शक-दल गन-गन काँप उठा,
नाहर से स्वयं भिड़ा नटवर,
पकड़ी गर्दन, धड़ उड़ा दिया,
वह सिह उड़ा मुर्गा बन कर ॥६९॥

वह गिरा हुआ सिर नाहर का—
मृग भाव-सहित था चाट रहा।
जादू का श्वान दौड़ आया
मृग के साहस पर डाँट रहा ॥७०॥

फिर कही दृश्य का पता नही
सब ताक रहे भौचक्का बन।
ताली की ध्वनि दे विस्मित-सा
जन-वर्ग हुआ फिर भाव-प्रमन ॥७१॥

तब तक देखा युग पहलवान
भिड़ गये जोश से खंभ ठोंक,
कर मल्लयुद्ध के दाँव-काट
उत्साहभरे बल से अरोक ॥७२॥

भर बाहु एक ने बगली दी
कर काट दूसरा निबुक चला।
फिर झपट उठाया पट ऊपर
कैचा भर मारा अपर तला ॥७३॥

फिर झपट एक ने बैठाया
बल देकर घूमा अपर रूम,
लख बल-प्रयोग जब दबा पुनः
मारा चट कालाजंग घूम ॥७४॥

ध्वनि 'वाह-वाह' की गूँज उठी,
वह कला-प्रदर्शन जादू का,
पर सम्मुख क्षण भर सत्य लगा
भर भाव वीरता के रस का ॥७५॥

तब तक देखा अतिरूपवती—
बाला लेकर जयमाला कर
वर की तलाश में खड़ी हुई
सस्मित मुख-मुद्रा किये मुघर ॥७६॥

नट ने संकेत किया मुड़कर
"जो हो प्रत्याशी बढ़ें इधर,
बाला स्वागत में खड़ी यहाँ
खोयें न कहीं सुन्दर अवसर" ॥७७॥

मनचले युवक अविवाहित कुछ
पहुँचे विनोदवश पंक्ति बाँध।
मुखमुद्रा में ऐंठन बनाव—
कर, रूपवती पर दृष्टि साध ॥७८॥

बाला करती थी दृष्टिपात
रह-रह कर अलग-अलग उनपर।
क्षणभर मोहित उन मूढ़ों की—
लख दशा चली परिहास-लहर। ७९॥

तब तक जादू का बूढ़ा वर
आ खड़ा हुआ सम्मुख उसके।
लकुटी के निपट सहारे वह
सनकुट थे केश सभी सिर के ॥८०॥

बाला ने उसकी दाढ़ी धर
मारा थप्पड़ सिर दिया हिला।
झकझोर दिया, लखकर उसकी—
निर्लज्ज व्यथा की काम-बला ॥८१॥

प्रत्याशी जन भी भभर उठे
स्वागत ऐसा ही हो न कहीं।
बारी-बारी खिसके थल से,
तब तक देखा वह दृश्य नहीं ॥८२॥

क्षण भाव हँसी का उमड़ चला,
दर्शक जन भरे विनोद-भाव
ताली ध्वनिभरी प्रशंसा की,
आगे फिर क्या, यह लिये चाव ॥८३॥

नव तक देखा झन-झन करता
स्वर्णिम मुद्रा का ढेर लगा।
दर्शक लोभी जो खड़े वहाँ
उनमें लालच का भाव जगा ॥८४॥

मुद्रा-समीप वह बाला फिर
सस्मित मुख आकर प्रकट खड़ी।
यद्यपि वह जादू की माया,
फिर भी नयनो में चमक पड़ी ॥८५॥

बोला नट, "कनक कामिनी अब
दोनो जो चाहें ग्रहण करें,
इच्छानुसार दोनो का ही—
अवसर विचार कर वरण करे" ॥८६॥

जादू का बूढा फिर आया
तब प्रेम-याचना करने को,
निज काम-वासना-तृप्ति-हेतु
औ धन से झोली भरने को ॥८७॥

थप्पड़ का स्वागत फिर पाया
मुख से निकली तक नही बात,
फिर गिरा भूमि पर हो उतान
ऊपर से खाकर कई लात ॥८८॥

नट बोला, "जो सज्जन चाहें
रस ले आ कनक-कामिनी से
निर्धनता अपनी दूर करें
घर भर ले नयी भामिनी से ॥८९॥

पर स्वागत का वह ढंग देख
कामी लोभी सब मौन रहे।
पानी खोकर उस सभा - बीच
अपने मन की फिर कौन कहे ? ।६०॥

क्षण में अदृश्य वह कनक - राशि
बाला का भी कुछ पता नहीं।
पर रोता और सिसकता - सा
कुछ क्षण था बूढ़ा खड़ा वहीं ॥६१॥

बोला जादूगर, "यही दशा
धर विविध रूप सबकी होती।
जीवन में कनक - कामिनी से—
बस, दंडमात्र की गति मिलती ॥६२॥

तब तक देखा खञ्जर लेकर
वह भीम भयानक पुरुष अड़ा,
लम्बी दाढ़ी अति नेत्र लाल
कटु रूप दानवी लिये खड़ा ॥६३॥

ललकारभरी मुद्रा ऐसी
जैसे हिसा हो रूप लिये।
लप - लप कटार थी चमक रही
रसना ज्यों काल विरूप किये ॥६४॥

जिसके सम्मुख थी काँप रही
वह सरल भावसी गोमाता।
थी बार - बार रंभण करती
जिससे करुणा का स्वर आता ॥६५॥

उस रौद्र रूप से भय खाकर
वह दया-पात्रसी सिमट रही
रक्षा के हेतु रँभाती थी
अन्तर-गति पीड़ित निपट रही ॥९६॥

"हाँ-हाँ, "ऐसा हो दृश्य नहीं"
कुछ लोगों से यह ध्वनि निकली।
कुछ बोले, — "यदि ऐसा होगा
तो बात न होगी यहाँ भली" ॥९७॥

लाठी सँभाल कुछ सजग हुए
"मारो दानव को धर पछाड़
भू पर पछाड़ सीने पर चढ़
चट उसकी लो दाढ़ी उखाड़" ॥९८॥

ललकार चतुर्दिक से आयी
"मारो-मारो, यह क्या आया?"
पर वह तो जादू की लीला,
क्षण में अदृश्य वह कटु माया ॥९९॥

बोला जादूगर हाथ जोड़
"धर्मी दाता, यह जादू भर।
करुणा की मात्र परीक्षा थी,
पाया सबमे करुणा का स्वर ॥१००॥

जिसके अन्तर के भावों में—
करुणा बसती पहले पद पर
बहु रस-विलासिनी माया में—
सुन पाता वह जीवन का स्वर" ॥१०१॥

क्षण मे सम्मुख फिर देखा तो
सिंहासन स्वर्णिम चमक उठा ।
मणि-खचित कला - पूरित जगमग
शृंगार - साज में दमक उठा ।।१०२।।

अपने वैभव में वह विशेष
शोभित अति कला - प्रदर्शन था ।
आँखों मे विस्मय नाच उठा
जिसका अद्भुत आकर्षण था ।।१०३।।

क्षण मे देखा, आसीन कौन ?
राजा नल दक्षिण भाग भले ।
वह वाम - भाग में दमयन्ती
छवि दर्शनीय निज तन की ले ।।१०४।

क्षण युगल चकित वह निरख दृश्य
राजा - रानी रथ पर सवार
प्रमुदित मन आत्म - विभोर सभी
अद्भुत जादू की छवि निहार ।।१०५।।

परिचारक चँवर डुलाते थे,
'जय - जय' ध्वनि नभ मे गूँज रही ।
अम्बर से हुआ सुमन - वर्षण
पुलकित क्षण भर लख हुई मही । १०६।।

बोला जादूगर हाथ जोड़
"छवि-भाव निरख लें, कीर्त्तिमान !
भगवान करें सिंहासन पर
यह जोड़ी रहे विराजमान" ।।१०७।।

क्षण - बाद लुप्त वह दृश्य हुआ
भग कर ज्यो भावो - बीच गया ।
नयनों के कोने - कोने में—
विस्मय की रेखा खीच गया ॥१०८॥

पर दम्पति को रथ पर सवार
जन - वर्ग आँख भर देख सका ।
नट - दर्शित युगल रूप सम्मुख,
सद्भाव सहज प्रसरित जिनका ॥१०९॥

राजा ने दे वहु पुरस्कार,
जादूगर को सन्तुष्ट किया ।
आशीर्वचन जनता को दे,
सबके भावों को पुष्ट किया ॥११०॥

रथ चलने को आदेश दिया,
सबसे पाकर शुभ भाव - नमन ।
मंत्री की उचित मत्रणा से—
आगे रथ का फिर हुआ गमन ॥१११॥

फिर राजमार्ग से रथ चलकर
नैसर्गिक वन के बीच चला,
खग - मृग कुसुमित वीरुध लगार—
से गति में भर कर दिव्य कला ॥११२॥

देखा, डाली पर मोर उचक
भावित मयूरिनी के स्वर से,
नृप - दम्पति में छवि - रूप सहज
नयनों भर निरख सिमट पर से ॥११३॥

वह 'पिऊ - पिऊ' कर बोल उठा
क्षणभर सबमे आकर्षण भर।
निज प्रिया - साथ सद्भाव लिये
फिर निरख सका छवि दिव्य सुघर ॥११४॥

स्वर की रसमयता में विलसित
पक्षी डालों पर विचर रहे।
वन - श्री का वह संकेत कहाँ ?
वह कौन विहग-स्वर बूझ कहे ? ॥११५॥

लख शुभागमन, सन्देश समुद
शुक बोली में निज जता रहे।
नृप - दर्शन से कोई बाकी—
रह सके न, सबको भाव लहे ॥११६।

कलरव कर खग झकझोर सुमन
तरु से नृप पर बरसा लेते।
राजा - रानी की श्री निखार
तन - लहरित छवि सरसा देते ॥११७॥

पत्ते हिल - डुल कर विजन डुला
शीतल बयार से सुख भरते।
निज भाग्य धन्य दर्शन से पा
सबकी श्रम - व्यथा सहज हरते ॥११८॥

घोड़ों की सबल हींस सुनकर
गवयों का विस्मित झुण्ड जगा।
कायरता कर्म - हीनतावश
साहस तज विचलित भड़क भगा ॥११९॥

लोवा-दल कावा काट भगा
माँदों में दबके कुटिल स्यार।
मृग दूर चौकड़ी साध भगे
मुड़ अकन अश्वगति बार-बार ॥१२०॥

यों प्रकृति-छटा के बीच विलस
रथ जा पहुँचा वन-सघन भाग।
वन की उस बीहड़ माया में—
भय विस्मय उर अति रहे जाग ॥१२१॥

वन-पशुओं के आवास समझ
तरु मौन खड़े समझाते-से
पत्ते भी काँप भयद गति में—
उर सजग भाव भर पाते-से ॥१२२॥

हिंसा-दर्शी खग कलरव भर
निज पंख फुरा ज्यों काँप उठे।
हिंसक पशुओं के घात भयद
प्रति दिन की नाईं भाँप उठे ।१२३॥

ठूँठे तरुवर पर गिद्ध भभर
कुछ निरख-परख फिर शान्त हुए।
बायस भी रव कर 'काँव-काँव'
कटु भावभरे उद्भ्रान्त हुए ॥१२४॥

नाहर की भयद गर्जना सुन
जन भय-विकारवश काँप उठे,
भय-संवेदन की गुरु रेखा
कुछ समय चौक कर नाप उठे ॥१२५॥

सब सजग हुए ले अस्त्र - शस्त्र
नृप स्वयं सजग निज साध वाण
भर अकन सिंह का दाव - घात
हर लेने को झट हिंस्र - प्राण ॥१२६॥

तब तक रोषा वह सिंह सबल
सम्मुख मे भयद गर्जना भर,
कोटर तज क्रुद्ध केसरी वह
झट झपट भाव में हिंसापर ॥१२७॥

नृप दृढ़ पैंतरा बदल तुरत
शर साध कर पड़ा विषम वार।
[illegible] पर घूमित ध्वनि कर
भर ली दहाड़ मानी न हार ॥१२८॥

फिर सजग भाव नृप वार किया
सिर लक्ष्य साध ले तीक्ष्ण वाण।
बैठा वह वार सही सिर पर
तब उछल गिरा तज जन्तु प्राण ॥१२९॥

होकर घोड़े पर तब सवार
राजा नल ले भाला कर में,
फिर सजग हुए कुछ अकन बात
जंगल के उस कर्कश स्वर में ॥१३०॥

तब तक बढ़ा आगे, विटप - ओट
भर रोष सिहनी की दहाड़,
चौंके सब सजग हुए चटपट
आ पहुँची तब तक डाँक झाड़। १३१॥